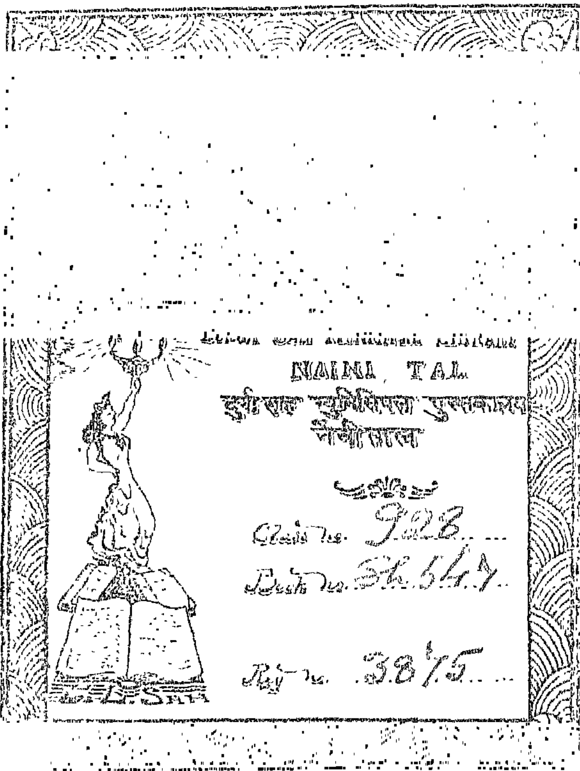
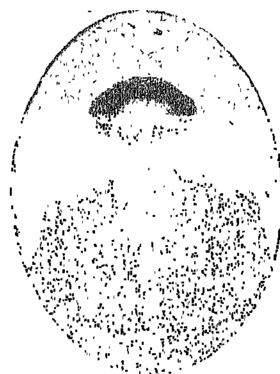

NAINI TAL
Class No. 928
Book No. Sh 54 J
Reg No. 3875



परिचय

‘शेली’ के अनुवादक तरुण लेखक श्री० यतेन्द्रकुमार के दिल में गुबारों का एक तूफान है; उसके उभार में एक द्रुत वेग है। संघर्षों से उसे अनुराग है, उनमें उसकी सहज रुचि है। जीवन की प्रेरणा ही उसे संघर्षों से मिली है, उन्हीं में वह पला भी है। स्पेन के गृह-युद्ध की तस्वीरों पर उसकी आँखें जमीं और उसकी वाणी अपनी प्रथम लाली लेकर उमड़ी और वह चारों ओर मानवता की मुक्ति के लिए संगठित संघर्षों को व्यग्रता पूर्वक विलोकने लगा।

१९४३ के बंगाल दुर्भिक्ष की विभीषिका में वह ‘अराकान की सड़क’ शीर्षक कविता से लोगों का हृदय हिलाने लगा और ‘मंजिल का गान’ में पुकार उठा—

“युग की अग्नि-शिखा मैं बनकर,
अन्धकार में चला चलूँगा।”

मानवता की विजय में अडिग विश्वास लिये उसका आकुल अंतर उद्वेलित हो उठता है और अपने आप को आश्वस्त करता हुआ अपने ध्येय को अभिव्यक्त करता है—

“मैं तो अपने आप बना हूँ जीवन की ठोकर खा प्रतिपल,
जीवन का है नाम दूसरा, संघर्षों की पहली मंजिल।
पल भर भी यदि रुका जगत के संघर्षों से पीछे हटकर,
तो है मृत्यु, किन्तु जीवन है अविरल जग से लेना टक्कर।”

शेली

(अङ्गरेजी के प्रख्यात रोमानी कवि पर्सी बिसी शेली का
जीवन वृत्त, काव्य साधना और काव्य-लोक)

रचयिता
यतेन्द्र कुमार एम० ए०

—:o:—

आमुख
प्रो० रामधारी सिंह 'दिनकर'

भूमिका
डा० राम विलास शर्मा एम० ए०, पी० ऐच-डी०

—:o:—

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मंदिर
अलीगढ़

प्रथमावृत्ति]   [मूल्य ढाई रुपया

श्रद्धेय

प्रो० मुरारी लाल

को

आमुख

अलीगढ़ के भावुक, नवयुवक, किन्तु, मेधावी साहित्यकार, श्री यतेन्द्रकुमार ने एक बड़ा ही आवश्यक कार्य पूरा किया है। हिन्दी के छायावादी काव्य पर अँगरेजी के महाकवि शेली का प्रचुर प्रभाव आँका जाता है, किन्तु, शेली की कविताओं का अनुवाद हिन्दी में अभी तक किसी ने किया नहीं था। यतेन्द्र जी ने शेली की अनेक प्रतिनिधि-रचनाओं का सफल अनुवाद करके राष्ट्र भाषा के इस अभाव को दूर कर दिया है।

मैंने कई कविताओं का अनुवाद स्वयं अनुवादक के मुख से सुना और सुनकर प्रायः, मंत्र-मुग्ध रह गया। शेली की भावुकता, शेली का आवेश और शेली की कोमल गर्जना, ये सारी चीजें हिन्दी अनुवाद में आ गई हैं और बहुलशः अनुवाद में सच्चा आनन्द प्रकट हुआ है।

जो लोग शेली की रचनाओं का आनन्द मूल में नहीं ले सकते थे, वे अब यतेन्द्र-कृत अनुवादों को झूम-झूम कर पढ़ेंगे।

मैं इस कवि के अनुवादक-कवि को बधाई देता हूँ। अजब नहीं कि यतेन्द्र में शेली की आत्मा हिन्दी में अपना उद्धार खोज रही हो।

—दिनकर

भूमिका

तरुण कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को लोग बङ्गाल का शेली कहा करते थे। इससे शेली के काव्य की सरसता का अनुमान किया जा सकता है। अङ्गरेजी भाषा में उससे बड़ा गायक-कवि नहीं हुआ। उसका विश्वास था कि कविता बिना परिश्रम के अपने आप कवि के हृदय से निर्झर की तरह फूट निकलनी चाहिये। उसकी कविता पढ़ने में ऐसी ही लगती है।

श्री यतेन्द्र कुमार ने बड़े परिश्रम से शेली की इन कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। शेली आधी बात शब्दों द्वारा कहता है तो आधी बात छन्द और लय द्वारा। इसलिये किसी के लिये भी उसकी रचनाओं का अनुवाद करना दुःसाध्य होगा। श्री यतेन्द्रकुमार ने अपने अनुवाद में जिस हद तक शेली के विचारों और भावों की रक्षा करली है, उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

हिन्दी कविता की भाषा अभी परिष्कृत हो रही है। अच्छे मौलिक कवियों की हिन्दी भी पाठक को जता देती है कि उसे सँवारने की जरूरत है। ऐसी दशा में श्री यतेन्द्रकुमार ने शेली के संगीत और प्रवाह को हिन्दी भाषा और छन्दों में उतारने का जो प्रयत्न किया है, वह स्तुत्य है।

ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति की छाया में शेली का जन्म हुआ। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति से उसे प्रेरणा मिली। प्लेटो के आदर्शवाद और ब्रिटेन के भौतिकवाद दोनों से ही वह प्रभावित हुआ। जिस समय धूर्त ब्रिटिश साम्राज्यवादी अपने व्यापार और राज्य का विस्तार करने में लगे हुए थे, उस समय मानो ब्रिटिश जाति की सम्मान रक्षा के लिये शेली ने अपना काव्य रचा। पूँजीवादी संस्कृति की विषमताओं के पंक में कमल की तरह उसका काव्य खिला हुआ है।

शेली की रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि पूँजीवादी समाज ने सहृदय कवियों को यातनाएँ दी थीं। इसीलिये शेली की रचनाओं में इतनी पीड़ा है, पीड़ा से त्राण पाने के लिये स्वप्नों का निर्माण है। लेकिन शेली विद्रोही कवि भी है। उसे आयर्लैण्ड, फ्रान्स, इटली, यूनान, ब्रिटेन

आदि की पीड़ित जनता से हार्दिक सहानुभूति थी। यद्यपि उसके सामने यह स्पष्ट नहीं था कि जनता किन साधनों से मुक्त होगी, फिर भी उसकी मुक्ति में उसे दृढ़ विश्वास था। उस मुक्ति के उसने गीत गाये। अन्याय और अत्याचार के प्रति उसने तीव्र रोष प्रकट किया। वह नये युग का गायक बन गया—वह नया युग जिसे आज मजदूर वर्ग के नेतृत्व में श्रमिक जनता समग्र धरती पर ला रही है। इसलिये शेली संसार के सभी देशभक्तों और जनवादी साहित्यप्रेमियों का प्रिय कवि है।

हिन्दी के अनेक कवि शेली से प्रभावित हुए हैं। बहुधा उसका स्वप्नदर्शी रूप ही हिन्दी पाठकों के सामने आया है। इस अनुवाद से वे उसकी बहुमुखी प्रतिभा से परिचित होंगे। इसलिये भी अनुवादक धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है, उनके इस परिश्रम का यथेष्ट आदर होगा और वे शेली तथा दूसरे विदेशी कवियों की रचनाओं का अनुवाद भी हमें देंगे।

—रामविलास शर्मा



वक्तव्य

आधुनिक हिन्दी काव्य की नूतन गतिविधि से जिसका रंच मात्र भी परिचय होगा, वह इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक नवीन और महान परिवर्तन की भूमिका बन रही है। जीवन की प्रगति में अनास्था रखने वाले कुछ साहित्यिक बौखलाये से इस प्रकार के परिवर्तन में कविता के विनाश का रूप देख रहे हैं। पर जिनका दृष्टिकोण इतना सीमित नहीं हो गया है, और जो आज के काव्य के क्षेत्र में होने वाले नये प्रयोगों, कविता के प्रति अपनाये नये रुखों, और साहित्य के नये मान-दण्डों के प्रति अनुदार भाव नहीं रखते, वे अवश्य इस बात को स्वीकार करेंगे कि हिन्दी कविता का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है, और यह सब परिवर्तन सृजनात्मक ही है। हिन्दी के कवि को जैसे किसी नई बात को कहने की व्याकुलता खाये डाल रही है, वह इसके लिये, नये भाव, नये शब्द, नये प्रतीक गढ़-गढ़ कर अपनी अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ा रहा है, इसके लिये न केवल वह अपने अन्दर ही झाँकता है, न केवल अपनी संचित पूँजी का ही प्रयोग कर रहा है, वरन्, उसके प्रयत्न की दिशा अनेकमुखी है। वह उर्दू साहित्य से ग़ज़ल और शैरों को अपना रहा है, अन्य प्रान्तीय भाषाओं के विरल रत्नों से अपने सरस्वती-मंदिर को सजा रहा है, जन जीवन में गहराई से पैठकर, चिर-उपेक्षित लोक गीतों की सरलता से अपनी कविता-श्री को अलंकृत कर रहा है। यह सब उसकी बड़ी बात कहने की बड़ी तैयारी ही है। हिन्दी का स्वरूप अब बदल गया है। वह राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन है। उसका क्षेत्र तीव्र गति से विस्तृत हो रहा है। उसका कवि भी अब सीमित दायरे में बंधा-बंधा न रहकर अपने युग के प्रति ईमानदार होकर काव्य-समस्या के विराट रूप को अपनी कल्पना में बाँधने को उन्मुख है।

इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रगति की इस धारा में मैंने भी अपने लघु प्रयास का जलकण डालना चाहा है। विश्व-काव्य की अनमोल निधियों से हिन्दी साहित्य को परिचित कराने के प्रयास में 'शेली' को प्रथम चुनने का न-जाना कारण चाहे कुछ रहा हो, पर जाना कारण यही है कि शेली सचमुच उन कवियों में अग्रगण्य है, जिनकी भावभूमि में भारतीयों को सहज अपनापन मिलता है। इस लघु संकलन की अनेक कवितायें इसकी साक्षी देंगी, जब पढ़ते-पढ़ते आपको हिन्दी के अनेक नये-पुराने कवियों की काव्य पंक्तियाँ सहज ही स्मरण होती चलेंगी। शेली स्वयं भारत से प्रभावित था। यद्यपि उसे न यहाँ आने का ही सुयोग मिला और न यहाँ

के बारे में उसे अधिक जानकारी ही थी, पर फिर भी, उसके अन्दर हमारे देश के प्रति श्रद्धा भाव था-जो उसी के भाई बन्द साम्राज्य की लिप्सा रखने वालों के दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत था। उसकी अनेक कविताओं में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। कहीं वह 'ऐलास्टर' में कवि के रूप में सौन्दर्य शोधी होकर अमरनाथ आता है, कहीं हिमालय के ऊपर भेड़ चराने की कामना करता है।

पर तोभी कवि शैली की भावभूमि कितनी ही अपनी लगे, आपको यह याद कर ही लेना पड़ता है कि उसके काव्यलोक का वातावरण विदेशी है। वह समुद्र पर छोटी सी नौका में अकेला घूमता है, प्रभंजनों के साथ खेलता है, बर्फीली चोटियों की सैर करता है, भूरे पर्वतों के समान तिरते आने वाले मेघ उसके संगी हैं। इसी वातावरण से उसकी त्वरित कल्पना बिम्ब उतारती चलती है। इसलिये आश्चर्य नहीं कि आपको उसके अनेक सुन्दर स्थल असुन्दर लगें। सम्भव है कि अनेक स्थलों पर आपको उसके उपमान बोधगम्य न हों। कहीं आपको समझने के प्रयास में पंक्ति समूह ही को लाँघना पड़े या अटकना पड़े। पर. इससे पूर्व कि ऐसी हर जगह पर आप अनुवादक को दोष दें, विनम्र निवेदन है कि उसे फिर मुड़-मुड़ कर देखें, धैर्य के साथ। फिर शायद आपको अपरिचय नहीं रह जायेगा। बड़े काव्यों के खण्डों में यह दुरूहता और भी अधिक परिलक्षित होगी, तो भी उसमें ऐसे स्थलों की कमी न रहेगी, जिनको पढ़ कर आपका मन आनन्द से न गमक उठे।

यों मैंने अनेक स्थलों पर मूल कविता के भाव, छंद, लय, बिम्ब, इत्यादि को ज्यों का त्यों उतारने का प्रयत्न किया है, अंशतः सफलता भी मिली है, पर हर जगह यह सम्भव नहीं हो सका, इसलिये प्रायः कविताओं का रूपान्तर सुविधानुसार छंदों में ही किया गया है। सबसे पहला ध्यान मूल के भावों पर ही रखा है। भावों की रक्षा के लिए अनेक स्थलों पर प्रवाह और माधुर्य की भी बलि देनी पड़ी है। लेकिन फिर भी अनेक कविताएँ इसका अपवाद हैं। कहीं-कहीं मूल के शाब्दिक अर्थों पर ही माथापच्ची करने और हिंदी पाठक के सामने नीरस प्रहेलिका प्रस्तुत करने के बजाय उसके भावों का स्वतंत्र अनुवाद कर दिया गया है। मूल कविता के भावों की रक्षा करने से प्रवाह में अनेक नये शब्द गढ़ने पड़े हैं, अनेक उपेक्षित और अप्रचलित शब्दों को सँवार कर यथास्थान रखकर काम चलाया है। कोशिश यही रही है कि मूल कवि की आत्मा ज्यों की त्यों हिन्दी में उतर आये।

अँग्रेजी साहित्य से घनिष्ठ परिचय रखने वालों के लिये शायद इसमें विशेष रस न आये। पर तो भी इस संकलन में उन्हें ऐसी कविताएँ संग्रहीत मिलेंगी जिनकी अँग्रेजी संकलनों में अक्सर उपेक्षा की गई है। कवि शैली के एक ही पर पक्ष अधिक जोर दिया गया है। इस संकलन में आपको कवि की ऐसी रचनाएँ भी मिलेंगी, जिन्हें पढ़ कर आप बरबस कह उठेंगे काश! इनका अनुवाद पहले हो गया होता! हमारे अध्यापक भी अँग्रेजों की लीक पर ही चलते हुए शैली के दूसरे रूप को प्रस्तुत नहीं कर पाये जो हमारे स्वातंत्र्य संघर्ष को भी प्रेरणा देता। पर देर आयद, दुरुस्त आयद, हमारा देश आज भी उसी कठिन आर्थिक वैषम्य की स्थिति में गुजर रहा है, जिसके तीखेपन ने भावुक कवि को झकझोर दिया था।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में अनेक अँग्रेजी ग्रंथों की सहायता ली गई है। विशेष रूप से प्रो० डौडेन की छहसौ पृष्ठों की प्रामाणिक जीवनी और डा० रामविलास शर्मा की अँग्रेजी पुस्तिका इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अन्त में मैं अपने उन सब श्रद्धास्पद साहित्यिक बन्धुओं, और मित्रों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने अभिमत, परामर्श और अक्षय धैर्य से मुझे प्रोत्साहन दिया।

आशा है कि विश्वकाव्य को हिन्दी में उतारने की मेरी योजना की पहली किश्त आपको रुचेगी।

इस सम्बंध में सभी उपयोगी सुझावों का हार्दिक स्वागत करूँगा।

निराला-जयन्ती १९५४ —य० कु०

१५६, प्रेमनगर, अलीगढ़

क्रमिका

शेली का काव्य-लोक

काव्यांश

संकेत—

'रिवोल्ट आफ इस्लाम'	के लिये	'रिवोल्ट'
प्रोमेथियस अनबाउण्ड	,,	'प्रोमे'
स्वेलोफुट द टाइरैन्ट	,,	'स्वेलो'
एपिप साइकीडियन	,,	'ऐपिप'
मास्क आफ ऐनार्की	,,	'मास्क'
पीटर बैल द थर्ड	,,	'पीटर बैल'
(वे पंक्तियाँ जो मूल में नहीं हैं, या शेली की लिखावट में नहीं पढ़ी जासकीं अथवा उसने अधूरी छोड़दीं)	,,	......

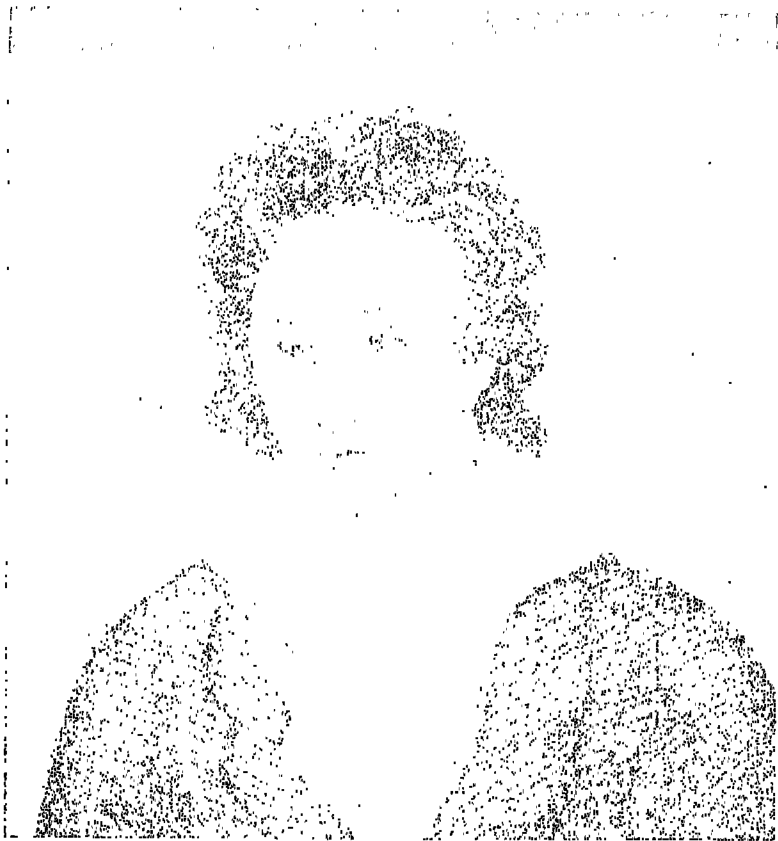
शुद्धि-पत्र

पुस्तक में छूटी अनेक अशुद्धियों के लिये हमें हार्दिक खेद है। कृपया शुद्धि पत्र की सहायता से कुछ प्रमुख अशुद्धियों को शुद्ध करलें। --प्र०

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	पं०
जन्म	जीवन	३	१
पत्र	यंत्र	५	१७
गोडविन	गौडविन	१२	२४
स्वर्णराशियों के	स्वर्णराशियाँ	१४	२४
सोफोक्लोज	सोफोक्लीज	२०	११
सम्पृष्टना	सम्पुष्टतर	२७	३
वाइरन	बायरन	२७	२६
सादृन्तीय	सामन्तीय	३०	६
स्वर्ग भीगी भीगी	भीगी भीगी	३०	२३
मौर	और	३१	२१
तत्कालीन	तत्कालीन	३२	२
सोनेट	सौनेट	३२	१६
अनठही	अनठही	३२	१६
मस्त	अस्त	३४	१४
दुष्कल्पना	द्रुतकल्पना	५६	२२

काव्य लोक

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पं०
खेते	खेत	१३	६
सा लगता	सी लगती	२१	२४
पक्षाण	कृपाण	७६	२८



पाश्चात्य प्रभंजन !—शेली !

(१७९२—१८२२)

इस भविष्यवाणी का बन जा, अब तू शंखनाद भरपूर !
आया है यदि शरद, रह सकेगा बसंत फिर क्या अब दूर ?



फील्डप्लेस-शैली का जन्मस्थान

शेली का जीवन-वृत्त

"हैं अधिकांश दुखी जन,
वे दुलराये गये भूल से काव्य-क्रोड़ में,
जिसे सीखते पीड़ा में वे,
सिखलाते हैं उसे गीत में!"

(शेली)

कवि शेली का जन्म यों तो कुल तीस ही वर्षों का है, पर उसके इस छोटे से जीवन पथ पर अद्भुत रहस्यों और घटनाओं का इतना अधिक प्राबल्य है कि इन थोड़े से पन्नों पर उसकी रूपरेखा भी भली-भाँति अङ्कित नहीं की जा सकती। साहित्य के इतिहास में शायद ही और ऐसा कवि हो, जिसके अन्दर प्रतिभा और व्यक्तित्व का ऐसा अनोखा संयोग हुआ हो। उसका अत्यंत अल्पकाल, सत्ता और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह और सत्य की निष्ठा पूर्ण साधना का प्रतीक है। उसके कवि और व्यक्तित्व का अविच्छिन्न सम्बंध है, इसलिये शेली के काव्य का उसके जीवन की प्रमुख घटनाओं के आलोक में ही निहारने से परिचय पाया जा सकता है। विचार और कर्म में इतनी समता शायद ही किसी के जीवन में मिले। जो सोचा या लिखा, उसका अक्षरशः जीवन में पालन किया। जो शेली है, वही शेली का काव्य है, जैसा उसका काव्य है, वैसा ही उसका जीवन है।

चार अगस्त सत्रहसौबानवे, अङ्गरेजी साहित्य का चिर-स्मरणीय दिवस है। इस दिन इग्लैंड के एक जागीरदार कुल में कविशेली का जन्म हुआ। पिता टिमोथी शेली समृद्धिशाली, आकर्षक व्यक्तित्व वाले, पर साधारण बुद्धि के जागीरदार थे, जिनकी राजनैतिक चेतना अपने दलनायक का आँख मींच कर समर्थन करने और धार्मिक ज्ञान रविवार को गिरजाघर जाने में ही सीमित था। साहित्यिकता से नितांत शून्य थे। श्रीमती शेली अत्यंत रूपवती, स्वास्थ्य सम्पन्न, और प्रसन्नचित्त महिला थीं। यह स्वाभाविक ही था कि इनकी संतान भी सुन्दर होती। कुल सात बच्चे हुए थे। एक की मृत्यु बचपन में ही होगयी थी। चार लड़कियाँ और लड़के जीवित थे। बड़े लड़के का नाम रक्खा गया था, पर्सीबिशी शेली, जिसका वर्ण असाधारण रूप से शुभ्र था। यों, उसके अवयव कुडौल थे, पर मुख सुन्दर था और इस सौन्दर्य का विशेष आधार था, उसका छोटा, पर गोल मटोल चिकना चौड़ा माथा, जिसके ऊपर कच्चे सोने के से वर्ण वाले कोमल रेशमी कुन्तल वन्य तृणावलियों में लहराते; पर इन सबसे सुन्दर थे उसके दो नयन-सरोवर जिनकी विशाल परिधियों में, आकाश की सी अगाध नीलाहट सिमटी हुई थी, जिसमें से उठते भावों के मेघ न जाने किन पार्थिव-बिम्ब-शैलों से टकरा कर बरस-बरस पड़ते थे और कवि का सम्पूर्ण आनन आत्मिक छवि-नीर से धुला-धुला सा रहता था, जिसकी निखरी सुघड़ाई पर विचरती दीप्ति देखने वाले की नजर को टिकने नहीं

देती थी। एक प्रसिद्ध चित्रकार ने कवि का 'पोर्टरेट' बनाने की अपनी असफलता की घोषणा करते हुए कहा, यह अत्यधिक सुन्दर है, और चित्रण की सीमा से बाहर है।

छै बरस की आयु में बालक शेली को 'वार्नहम' के स्कूल में बिठा दिया गया। तत्पश्चात्, 'ब्रेंटफोर्ड' के 'सियोन्स-स्कूल' में एक स्कॉच अध्यापक की देखरेख में उसने शिक्षा पाई।

उसके शैशव में असाधारण गम्भीरता थी। चाँदनी रात में नीहारिकाओं को निहारते हुए घर से निकल कर शून्य पथों पर विचरता रहता। बूढ़ा नौकर चुपके से उसका पीछा करता, पर हमेशा वह खबर यही लाता कि बिशी, सिर्फ घूमता ही रहा और घर वापस चला आया। स्कूल में भी वह अपनी गम्भीरता के कारण 'सनकी' और 'अत्यंत असामाजिक जीव' के नाम से विख्यात था। उसकी इस आदत से लड़के उसे और तंग करते, जब शेली के धैर्य का प्याला भर जाता, 'तब' उसके बचपन के सखा और बाद के जीवनी लेखक, कप्तान मैडविन के शब्दों में, 'उसकी आँखें, चीते की तरह जल उठतीं। वह एकाएक लपकता, अथवा जो भी कुछ हाथ पड़ता, उससे आक्रमण कर देता" गणित से वह घबराता, नाच के सबक से दूर ही रहने की कोशिश करता, यदि मजबूरी रह ही जाना पड़ता, तो पैर ऐसे उठते, मानो शहीद कर दिया गया हो! खेल-कूद में उसे प्रायः गैरहाजिर पाया जाता। पर तो भी वह कुछ सीख रहा था। विद्वता ने अनजाने में ही उसका कर थाम लिया। 'ईटन' तक प्रवेश करते-करते ग्रीक, लैटिन पर उसका असाधारण अधिकार हो गया। उसका समय 'प्लिनी' के इतिहास के अनुवाद में, लैटिन की धारा प्रवाह तुक जोड़ने में कट रहा था। और तब वह कैशोर्य्य के किनारे पर से अपने चरण तरुणाई की तरणी में धर चुका था। पाठ्य पुस्तकें बच्चों के खेल के समान थीं। पर एक और चीज में उसकी रुचि बढ़ रही थी, वह थी उसकी भूत-प्रेतों, राक्षसों और तिलिस्मों की कौतूहल-नगरी, जिसके जादुई जगत का, वह अपनी कल्पना की दूरबीन से पर्यवेक्षण करता। सोते, जगते, उठते, बैठते, इन्हीं की रहस्य भरी छायाएँ उसके मानसिक जगत में घूमती रहतीं। और कुछ तो, उसके जीवन के अन्त तक अचेतन शिराओं में बसीं, रूप बदल-बदल कर उसके काव्य और दृश्य-परिधि में प्रकट होकर उसे भरमाती रहीं।

घर में बच्चों को बड़ा प्यार करता, कंधों पर चढ़ा कर सैर कराता, जादूगरों और राक्षसों की नई-नई कहानियाँ सुनाता, कभी-कभी विचित्र वेषभूषा पहिन कर इनका अभिनय भी किया जाता। उसकी छोटी बहिन हेलेन के अनुसार, जब भाई ऐसे कपड़े पहिन कर घर भर में घूमता, तो इस आशंका में कि एक दिन इसके हाथों घर को अवश्य ही लपटों में राख होना है, किसी को संदेह न रह जाता।

'सियोन्स' से ईटन तक पहुँचने में, विज्ञान के प्रति उसका झुकाव और हो चला था। ईटन की विज्ञान शाला का एक नौकर सामान निकाल कर बेचने में बड़ा कुशल था, और शैली उसके सामान का सबसे बड़ा खरीदार था, अक्सर नये-नये रासायनिक घोलों को मिलाकर वह अटपटे प्रयोग करता। अपने कमरे में एक रात को बत्ती जलाकर शैली एक विशेष प्रयोग कर रहा था, इतने में संरक्षक-अध्यापक ने सहसा प्रवेश किया, देखा कि शैली, कुछ 'गैल्वेनिक वोल्ट' फिट किये कुछ आग की नीली लौ-सी उठा रहा है. कौतूहल और कुछ रोष से उसने पूछा, क्या हो रहा है?

'राक्षस को उठा रहा हूँ' शैली ने बिना झिझक के उत्तर दिया। अध्यापक ने उस यंत्र को छुआ ही था कि उसे बड़ी जोर का धक्का लगा और गिर पड़ा।

छुट्टियों में घर आता, तो हाथ तेजाब में जले होते, कपड़ों में छेद होते, जो उसके विज्ञान प्रेम की कहानी को पुकार-पुकार कर कहते। पर शैली को विज्ञान के रोमानी पक्ष में ही रुचि थी, उसके ज्ञान पक्ष को वह कभी भी व्यवस्थित होकर अध्ययन नहीं कर सका। विज्ञान उसके सामने जादू की पिटारी की तरह था, और वैज्ञानिक हरशैल प्रीस्टले, डेवी, जादूगर थे। जीवन भर उसे इस पक्ष से मोह बना रहा। अपनी कविताओं में अनेक स्थान पर इसका वर्णन किया है।

'ईटन' में एक और शौक उसे था। प्रायः खाली समय में वह 'स्टोक पार्क' के कब्रिस्तान में घूमा करता। सुनते हैं कि वहीं बैठकर 'ग्रे' ने अपनी प्रसिद्ध 'एलिजी' लिखी थी। यदि साथ में दोस्त होते, तो भूत प्रेतों की अनेक कहाँनियाँ बड़ी रुचि से सुनाता। अपनी प्रसिद्ध कविता 'मानसिक रूपश्री' के प्रति' में मानसिक स्थिति की झलक मिलती है—

जब था शिशु मैं फिरता प्रेतों की तलाश में,
गुंजित कक्षों, गुफों, ध्वंसों, नखत ज्योतिर्मय वन प्रान्तर में,
मृत मानव के विषयक, अनिश्चय वार्तों के मैं पीछे-पीछे,
अपने भय कम्पित चरणों से घूमा करता।
मैं विषमय वचनावलियों को सुनता जिनको,
सुनते-सुनते ऊब गया है तरुण आज का,
मैंने उनको सुना, भ, देखा!

['मानसिक रूपश्री' के प्रति !]

वह आरम्भ से ही हर प्रकार की सत्ता और निरंकुशता का विरोध करता। मैडविन के अनुसार, जब वह अन्याय या जुल्म की कोई बात पढ़ता या सुनता, तो उसका खून खौल उठता, और मुख पर क्रोध झलकने लगता। एक दिन विद्यालय में शारीरिक-श्रम-नियम का, जिसे वह 'संगठित क्रूरता' समझता था, खुले आम उल्लंघन कर उसने अधिकारियों से पर्याप्त दण्ड पाया। पर तबसे इस विस्मय-जनक असामाजिक जीव से सभी परिचित हो गये और वह 'पागल शैली' या 'नास्तिक शैली' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

'ईटन' काल में ही उसे लेखक होने की धुन सवार थी। मैडविन और अपनी छोटी बहिन ऐलिजा के सहयोग से कुछ कवितायें और कहानियाँ भी उसने छपाई थीं। 'जस्ट्रोजी' नामक एक उपन्यास भी लिखा था, जिसे किसी प्रकाशक ने छापा भी था। इन्हीं दिनों ग्रीक दार्शनिकों की कृतियों के साथ-साथ प्रसिद्ध विचारक विलियम गोडविन की प्रसिद्ध कृति 'पॉलिटिकल जस्टिस' उसकी प्रिय संगिनी बन गई, जिसने उसे इतनी गहराई से प्रभावित किया कि शैली का सम्पूर्ण जीवन ही जैसे उसकी अनुगूँज बन गया। १८१० में उसने 'आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश किया।

इस काल का वर्णन 'टामस जैफरसन होग' ने अपनी शैली की जीवनी में बड़ा विशद और रोचक किया है। होग की प्रवृत्ति शैली से विपरीत थी, पर बौद्धिकता के सूत्र से दोनों घनिष्ठ हो गये थे। होग, शैली का बड़ा सम्मान करता था। उससे पहली भेंट हुई एक मध्याह्न भोज के समय। न जाने कैसे दोनों बहस में उलझ गये। विषय था जर्मनी का कविता स्कूल मौलिक है, अथवा इटली का।

हौग जर्मन स्कूल को अमौलिक और इटैलियन को मौलिक बताता था। शेली विरोध कर रहा था। बहस में कितनी देर हुई, इसका पता तब लगा, जब सब जा चुके थे, नौकर मेज साफ कर रहे थे। थोड़ी देर पश्चात् शेली हौग के कमरे में आया और शान्ति पूर्वक बोला, भई बहस मैंने फिजूल की थी, मुझे न इटैलियन आती है, न जर्मन, जो कुछ कहा था, वह अङ्गरेजी अनुवादों के आधार पर है। तब हौग ने भी स्वीकार किया, मैं भी दोनों में बिलकुल कोरा हूँ। सिर्फ दूसरों की कही बातें दुहरा रहा रहा था।

"बात चीत का रस निबट चुकने के पश्चात्" हौग लिखता है, "मुझे इस असाधारण अतिथि को देखने का मौका मिला"

"वह बहुत-सी असंगतियों का समूह था। उसकी आकृति पतली दुबली थी, पर तो भी उसके हड्डी के जोड़ चौड़े और मजबूत थे। लम्बा था, पर इतना झुका हुआ था कि कद छोटा लगता था। कपड़े कीमती थे और आधुनिकतम फैशन से सिले थे, पर सिकुड़े, गुड़मुड़ी से और बिना ब्रुश किये हुए थे। उसकी निगाहें उत्तेजना पूर्ण थीं, कभी-कभी भद्दी भी लग उठतीं थीं, पर तो भी विनीत और शालीन थीं। उसका त्वचावर्ण लगभग लड़कियों जैसा कोमल, विशुद्धतम लाल और श्वेत वर्ण का था। तौभी सूरज की धूपसे रूखासूखा सा लगता था, जैसा कि उसने बताया कि वह जाड़े भर 'शूटिंग' करता रहा है। उसके अवयव, उसका सम्पूर्ण आनन विशेष रूप से उसका सिर सब असाधारण रूप से छोटे थे। पर बाद का, लम्बे और घने केशों के कारण भारी मालूम देता था। खोई-सी-स्थिति में, अथवा विचारों की उत्तेजना में, या गुस्से में, वह हाथों से उन्हें जोर-जोर से मलने लगता था अथवा उँगलियों को वह केश गुच्छों में वह इतनी तेजी से चलाने लगता था कि वे भद्दे और वन्य प्रतीत होते थे।... आवाज असहनीय रूप से पैनी और कर्णकटु और फटी-फटी सी थी।"—इसके पश्चात् शेली और हौग परम मित्र होगये हौग ने अपने संस्मरणों में शेली के तत्कालीन जीवन के अनेक रोचक तथ्यों को सुरक्षित रक्खा है।

शेली इन दिनों प्लेटो, 'प्लिनी', 'सोफोक्लीज', 'कोल्डून' और 'गौडविन' की कृतियों के साथ, इग्लैंड के प्रसिद्ध विचारक 'लॉक' और 'ह्यूम' तथा फ्रांसिसी निबंधकारों का अध्ययन करता था। उसके पढ़ने के बारे में हौग लिखता है,

"इतना अधिक कोई विद्यार्थी नहीं पढ़ता था, हर समय उसके हाथ में पुस्तक रहती थी। मौसम, बेमौसम, मेज पर, खाट पर, टहलते समय शान्तिमय गाँवों में या सूनी पगडण्डियों पर ही नहीं, वरन् लंदन के आम रास्तों, और भीड़ भरी सड़कों पर···दिन और रात का तीन चौथाई समय वह अध्ययन में लगाता था। पढ़ना उसके उन्माद की सीमा तक था।··"

उसके पढ़ने के विषय में उसके मित्र 'पीकोक' ने भी लिखा है कि किताबों में प्रायः वह ऐसा खो जाता था कि खाना धरा-धरा घण्टों सूखा करता। ट्रिलोनी ने भी अपने संस्मरणों में उसके एक हाथ से नाव का चप्पू और दूसरे में किताब पढ़ते रहने और फलस्वरूप डूबने से बचाये जाने का रोचक वृत्तांत दिया है।

शेली का सोना भी बड़ा विचित्र था, इतना गहरा सोता था कि उसकी नींद बेहोशी मालूम देती थी। बहस करते-करते वह अचानक सो जाता और खर्राटे लेने लगता, सोते-सोते बड़बड़ाना। बाहर निकल कर चल देना, दिवास्वप्न देखना, उसकी साधारण आदत थी। सोने के बाद उठते ही, बहस की छूटी--हुई-कड़ी को फिर तुरन्त उठा लेता!

शेली का नैतिक स्तर बड़ा ऊँचा था। प्रेम उसकी रग-रग में समाया था। हृदय दया और उदारता से लबालब भरा था। हॉग लिखता है,

"किसी भी व्यक्ति में शायद ही नैतिक भावना कभी इतनी पूर्णरूप से रही थी, जितनी शेली में थी,···अच्छे और बुरे के ऊपर शायद ही किसी की दृष्टि इतनी तीव्र हो···जितनी उसकी बौद्धिक प्रवृत्तियाँ तीव्र थीं, जितनी प्रबल उसकी प्रतिभा का वेग था, उतनी ही पवित्रता और उच्चता उसके जीवन में थी।"

लिखने के साथ-साथ उसके साहित्यिक प्रयत्न भी चल रहे थे। एक दिन पिता टिमोथी शेली ने प्रकाशक 'स्टोकडेल' से कहा,। 'देखो मेरे इस बेटे को साहित्य से शौक है, वह लेखक पहले से भी है। यदि इसे छपाने की कोई सनक आये, तो प्रोत्साहन देते रहना"

कुछ मास पश्चात् पुत्र को जो पहली छपाने की सनक उठी, उसने न केवल 'आक्सफोर्ड' के ही, वरन अपने पिता के भी घर के दरवाजों को भी सदा के लिये बन्द कर दिया।

'नास्तिकवाद की आवश्यकता' पर उसने एक पर्चा छपवाया, जिसमें शायद हौग का भी हाथ था। सभी प्रमुख स्थानों पर भेजा। इसका प्रकाशन शेली के जीवन की एक बड़ी घटना थी। तब विश्वविद्यालयों पर पादरियों का पूरा शासन था। अधिकारियों के पर्चे हाथ पड़ते ही शेली और हौग विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिये गये।

एक ही झटके में कृशकाय तरुणाई की तरणी का लंगर टूट गया, और यह जर्जर पाल के सहारे, आवेश की आँधी में जीवन के सागर की अपरिसीमा को अपनी गति में बाँधने चल पड़ी!

दूसरे दिन मार्च २६, १८११ को वे आक्सफोर्ड छोड़कर लंदन चल दिये और पौलेण्ड स्ट्रीट के एक मकान में रहने लगे।

जब पिता ने सुना तो उसकी कड़ी भर्तस्ना करते हुए उसे लिखा 'अधिकारियों से तुरन्त क्षमा माँगो'। पर सिद्धान्त-शिला से तराशी मूर्ति ने तुरन्त ही यह अस्वीकार कर दिया! खर्च बन्द कर दिया गया। पिता ने कपूत को अपना मुँह दिखाने की भी सख्त मनाही करदी।

दूसरे झकोर ने तरणी के पाल भी उखाड़ दिये।

पर अभी स्नेहदीप की वर्तिका उसके अगम अँधेरे जलपंथ को जगमगा रही थी। 'ईटन' के दिनों में उसका स्नेह सम्बंध 'हैरियट ग्रोव' से हो चुका था, जिसके परिणय की स्वीकृति दोनों परिवारों की ओर से मिल चुकी थी। हैरियट अत्यंत सुन्दरी थी, उसका बौद्धिक स्तर भी साधारण लड़कियों की अपेक्षा उच्च था। शेली के हाथ संघर्ष के थपेड़े खाकर, अवश भाव से उसी को खोज रहे थे। तरणी के खेवन हार को असीम आकाश और सिन्धु की अँधेरी में प्यार के उसी दीपक का सहारा था। हैरियट का भी उत्तर मिल गया, वह नास्तिक शेली से घृणा करती है!

हाथ बे आसरे छटपटाते रह गये। क्षुब्ध सिन्धु की हिल्लोलों के शीश पर पालहीन, पतवार हीन, आश्रयहीन तरणी मचलती रही।

हैरियट का विवाह कुछ काल पश्चात् 'भूमि के जीव' से हो गया, हौग भी अपने वकालत के अध्ययन के लिये उसे छोड़ कर चला गया।

शेली के दिन अत्यंत कठिनाई से कटने लगे। तभी परिचय हुआ उसका दूसरी 'हैरियट' से, मिस हैरियट वैस्टब्रुक से। लंदन में पढ़ने वाली शेली की बहिनें अपने जेबखर्च को, इकट्ठा कर अपनी सहेली हैरियट वैस्टब्रुक के हाथ भिजवाने लगी। मिस वैस्टब्रुक जो एक धनी होटल वाले की स्वस्थ और सुन्दर कन्या थी, शेली की ओर आकर्षित हुई। उसके घर वालों ने भी, विशेषकर उसकी बड़ी बहिन, मिस ऐलिजाबेथ वैस्टब्रुक ने उसके एक बड़ी जागीरदार के उत्तराधिकारी होने की लालसा को प्रोत्साहन दिया, और एक दिन शेली को उसके घर वालों के क्रूरतापूर्ण 'अन्याय' से उसकी 'रक्षा' करने के लिए विवश होना पड़ा, और अगस्त २८, १८११ को 'ऐडिनबरा' जाकर शेली और हैरियट का परिणय-सम्बंध हो गया। यहाँ यह स्मरणीय है कि शेली हैरियट को चाहता अवश्य था, शायद इसलिये कि उस पर 'अन्याय' किया गया था, पर 'प्रेम' जैसी भावना उसके प्रति नहीं थी। पर उसने यह सोच कर कि उसकी इस स्थिति के लिये वह स्वयं ही 'उत्तरदायी' है, उसे विवाह कर बचाना अपना नैतिक कर्तव्य समझा। यहाँ वे अत्यंत कठिन आर्थिक परिस्थिति में गुजर रहे थे, पर तो भी प्रसन्न चित्त थे। यहीं उनके साथ, रहने को उनका मित्र हौग भी आ गया। तदनंतर हैरियट की बड़ी बहिन मिस ऐलिजाबेथ वैस्टब्रुक भी आगई, और शेली की अनिच्छा, पर हैरियट की इच्छा से उसने सारे घर की बागडोर भी अपने हाथ में लेली।

इन दिनों शेली का अधिकांश समय पढ़ने लिखने में ही कट रहा था। हैरियट के अन्दर भी अध्ययन के प्रति रूचि जागृत हो रही थी। शेली का आर्थिक मामलों पर पिता से झगड़ा चल रहा था, इसलिये उसे 'फील्डप्लेस' जाना पड़ता था। यहीं उसकी भेंट अध्यापिका मिस ऐलिजाबेथ हिचनर से हुई, जिसके उन्नत विचारों से शेली बड़ा प्रभावित हुआ। दोनों में काफी समय तक पत्र-व्यवहार हुआ। वह अपने स्थान को छोड़कर शेली परिवार के साथ भी रही, पर निकटता ने दूर फेंक दिया। वह तो साधारण विचारों की स्त्री निकली! उसका 'प्लैटोनिक-इश्क' टूट गया, और वह भी 'नास्तिक शेली' के कारण अपनी 'खोई' प्रतिष्ठा के लिये हरजाने के तौर पर कुछ वार्षिक धन का वचन लेकर पृथक् हो गई।

'ड्यूक-ऑफ-नौरफोक' के बीच में पड़ने से मि० टिमोथी शेली ने शेली को दो सौ पाउण्ड वार्षिक बाँध दिया। इस प्रकार गृहस्थ

की गाड़ी चल निकली जो ऐडिनबरा से होती हुई, 'केस्विक' पर आकर रुक गई। यहाँ पर शेली की भेंट महाकवि 'सदे' से हुई। सदे ने विचारों की भिन्नता के बावजूद शेली के साथ बड़ी नम्रता और स्नेह का व्यवहार किया। पर शीघ्र ही शेली की सदे के प्रतिक्रियावादी विचारों से उसकी महानता के प्रति धारणा बदल गई। उसने इन दिनों के अपने एक पत्र में लिखा, "सदे के बारे में अब मेरे पहले जैसे ऊँचे विचार नहीं हैं, उसका मस्तिष्क अत्यंत संकीर्ण है, मेरे हृदय को चोट पहुँचती है, वह सोचकर कि वह क्या हो सकता है, पर क्या है···" केस्विक' की अन्य महत्वपूर्ण घटना थी, मि० विलियम गौडविन से पत्र-व्यवहार। शेली ने गौडविन को अपना संरक्षक और मार्ग प्रदर्शक चुना। गौडविन ने भी इस दुर्द्धर्ष शक्ति को संयत कर इसको उचित उपयोग की दिशा में प्रवर्तित करने का कार्य हाथ में ले लिया। आगे चलकर इस सम्बंध का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। इसके कुछ दिन पश्चात् ही शेली और हैरियट आयरलैण्ड के कैथोलिक मुक्ति संग्राम में भाग लेने के लिये चल पड़े, जहाँ उन्होंने 'आइरिश जनता के नाम' शीर्षक एक पर्चा निकाला। कुछ हलचल करने के पश्चात् वे वापस चले आये। तत्पश्चात्, 'उत्तरी वेल्स' में रहकर उन्होंने अपना राजनैतिक प्रचार जारी रखा। कुछ पर्चे भी निकाले, जिनमें 'अधिकारों की घोषणा' और 'लार्ड ऐलिनबरा को एक पत्र' प्रमुख हैं। १८१२ के बसंत काल में कवि पर्सीबिशी शेली ने अपनी प्रथम गम्भीर रचना 'कीन मैब' नाम से प्रस्तुतकी, जिसमें उसने विवाह धर्म, राजनीति, समाज, वणिज, इत्यादि पर विचार प्रकट किये। शेली की विचार धारा को समझने के लिये यह पुस्तक अत्यंत बहुमूल्य है, यद्यपि कविता की दृष्टि से अपेक्षाकृत उत्कृष्ट नहीं है। इसका प्रचलन उसने सीमित ही रखा। इसकी समाज में बड़ी निन्दात्मक प्रतिक्रिया हुई।

इन्हीं दिनों शेली पर दो बार सांघातिक प्रहार भी हुआ। कुछ लोग इसे शेली का दिवास्वप्न जिनकी उसे आदत थी, बताते हैं, पर अधिकांश की धारणा यही है कि वे वास्तविक घटनाएँ थी। यहाँ उन्हें घोर आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ा। शेली अपने सिद्धान्तों की रक्षा और शहादत के जोश में सब सह रहा था, पर हैरियट का धैर्य चुक गया था। अपने ऋणदाताओं से आँख मिचौनी करते एक घर से दूसरा घर बदलते फिरते थे। १८१३ में हैरियट के एक पुत्री उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'इयान्थे' रखा, शेली इसे बड़ा

प्यार करता था, पर हैरियट का मातृस्नेह, पितृस्नेह के बराबर न था, उधर आर्थिक संकटों के साथ-साथ मिस ऐलिजाबेथ वैस्टब्रुक घर में निरंतर कलह का कारण बन रही थी। निदान शेली के पीछे एक दिन हैरियट अपनी बहिन के साथ अपने घर चली गई। शेली इन दिनों गोडविन-परिवार में आता जाता था, जहाँ उसकी भेंट गोडविन पुत्रियों[1] से हुई—

हैरियट की उपेक्षा ने शेली को दूर ठेल दिया, और अब वह अधिकाधिक मेरी गोडविन की ओर आकर्षित होने लगा। लन्दन में अपने पिता के घर हैरियट ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम चार्ल्स बिसी शेली रक्खा गया। कुछ लोग शेली की इस बात का कि यह बालक उसके सम्बंध से नहीं था, समर्थन करते हैं। पर इस सब के बावजूद भी, शेली का हैरियट के साथ व्यवहार सदा ही बड़ा उदार रहा। वह दूर रहते हुए भी संरक्षक की भाँति उसकी कठिनाइयों की देख रेख करता था और आर्थिक सहायता भेजता था।

थोड़े दिन उपरांत, शेली और मेरी परस्पर स्नेह-सूत्र में गुँथ गये। मेरी अत्यंत सुन्दरी और स्वतंत्र विचारों वाली तरुणी थी, और ऐसा होना स्वाभाविक था। उसका पिता गोडविन इग्लैंड की महान वैचारिक क्रान्ति का प्रणेता था, और माँ, वूल्स्टोनक्राफ्ट सर्व प्रथम क्रान्तिकारिणी महिलाओं में से थी, जिन्होंने नारी की स्वत्वरक्षा की आवाज उठाई थी। शेली के सौन्दर्य्य से भी अधिक उसकी मानवीयता और शिशुसुलभ स्वभाव ने मेरी को मोह लिया। कवि का भी उसके प्रति बड़ा आकर्षण था। वस्तुतः 'प्रेम' जैसी वस्तु से परिचय उसका अभी ही हुआ। दोनों इग्लैंड छोड़ कर चले गये। साथ में 'क्लेरा' भी गई। गोडविन और श्रीमती गोडविन दोनों शेली से बड़े नाराज हो गये। यह तरुण दल फ्रांस घूमता हुआ, वहाँ के नष्ट भ्रष्ट अकाल-ग्रसित गाँवों और नगरों में घूमता हुआ स्विटजरलैण्ड पहुँचा। उसके 'रिवोल्ट आफ इस्लाम' में अनेक स्थलों पर इस विभीषिका की स्मृति का घना स्पर्श है, 'आतिथ्य' शीर्षक हमारे काव्यांश, का आधार, जिसमें युद्ध के तूफान में टूटी हुई सद्यः पुत्रहीना मा के दैन्य और

[1] मिस मेरी वूल्स्टोनक्राफ्ट गोडविन—पहिली स्त्री से, मिस जैनी क्लेरामेरट या क्लेरा—दूसरी पत्नी के पहले पति से–मिस फैनी गोडविन—(दूसरी स्त्री से)

शोक की चरम मानसिक स्थिति का, उजड़े घरों, और लाशों की पट-भूमि पर चित्रण किया है, कोरी कल्पना नहीं है, वरन ऐसी एक यथार्थ स्मृति है जिसकी कटुता कवि के उर में गहराई से प्रवेश कर चुकी थी, और अनेक कविताओं में, उसकी युद्ध-विरोधी-पुकारों में यही नरहिंसा विरोधी-प्रतिक्रिया गूँजती रही।

इस यात्रा का प्रमुख ठहराव स्विटजरलैण्ड का 'ब्रूनों' स्थान रहा, पर आर्थिक संकट के कारण दल को पुनः लौटना पड़ा। यद्यपि गोडविन शेली से अत्यंत अप्रसन्न था, बड़े-कड़े पत्र लिखता था, पर अपने कर्जदारों से निष्कृति पाने के लिये अपने इस अवैध जामाता को ही विवश करता था। शेली के ऊपर लदे ऋण के इतने बड़े बोझे के प्रमुख कारण यही गोडविन महाशय थे।

तभी शेली के सौभाग्य से, उसके बाबा सर बिस्सी शेली की अत्यंत परिपक्व आयु में मृत्यु हो गई। उसके पिता, टिमोथी शेली अब सर टिमोथी शेली हो गये, और कानून के अनुसार सम्पत्ति का उत्तराधिकारी, अब शेली हो गया। वह और उसके अवैध श्वसुर गोडविन, तत्काल ही एक बड़ी सीमा तक ऋणग्रस्ति से मुक्त हो गये। लगभग एक सहस्र पा० की वार्षिक आय में से, दोसौ पा० वार्षिक हैरियट को बाँध दिये।

शेली का इन दिनों स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। मेरी के प्रथम, शिशु-जो एक लड़की थी—की मृत्यु हो जाने के कारण उसे और शोक पहुँचा। टेम्स नदी से लैचलैण्डतक की यात्रा से, जिसमें मेरी, क्लेरा, और शेली के अतिरिक्त, क्लेरा का भाई चार्ल्स भी था, शेली के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा। लौटने पर उसने 'ऐलास्टर' (१८१५ ई०) नाम की एक लम्बी कविता लिखी, जिसमें प्राकृतिक सौंदर्य्य के अपूर्व चित्रण के साथ-साथ प्लेटो के सौन्दर्य के सिद्धान्त की एक कवि की यात्रा में अच्छी व्यंजना हुई है। इसमें कथा-प्रवाह अल्प है, सौन्दर्य्य की खोज में कवि के चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं शेली ने उसकी पृष्ठभूमि में चल-नैसर्गिक दृश्यों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। प्रस्तुत संग्रह में 'कवि का अवसान' शीर्षक से 'ऐलास्टर' के काव्यांश में सौन्दर्य्य-शोध में असफल कवि की कारुणिक मृत्यु का मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है, जिसकी पटभूमि में, प्रकृति के संध्या के बिम्ब को अङ्कित कर, शेली और

भी मार्मिक बना देता है। इसमें शेली का कला-पक्ष सचमुच निखर उठा है।

२४ जनवरी १८१६ को मेरी के दूसरा शिशु, अब के लड़का विलियम शेली-पैदा हुआ। गत यात्रा में, शेली का जिनोआ में लार्ड बायरन से मिलन हुआ था, जहाँ क्लेरा और बायरन का परस्पर प्रेम सम्बंध हो गया, इसके परिणाम स्वरूप क्लेरा के एक पुत्री एलेगोरा-हुई।

इसी बीच नदी में डूब कर हैरियट की आत्महत्या का दुखद समाचार मिला[1] शेली ने अपने दोनों बच्चों 'इयान्थे,' और 'चार्ल्स' को लेने की कोशिश की, या हैरियट के पिता, मि० वैस्टब्रुक ने 'चांसरी कोर्ट' में बच्चे शेली को न दिये जाने का प्रार्थना-पत्र दिया। लार्ड चांसलर 'ऐल्डन' ने अपना निर्णय देते हुए कहा "चूँकि शेली ने 'क्वीनमैब' लिखा है, जिसमें उसने 'नास्तिकवाद' का प्रचार किया है, और चूँकि वह ईसाई विवाह पद्धति पर आस्था नहीं रखता, इसलिये बच्चों के भावी हित को ध्यान में रखते हुए उसे इन बच्चों के पिता होने के अधिकार से वंचित किया जाता है।'''और बच्चों के इन हितैषियों ने 'नास्तिक पिता' को बच्चे न लौटाये। शेली इस आघात को कभी न भूला। शोषकों के विरुद्ध उसकी घृणा और तीखी हो गई। अपनी अनेक कविताओं में इस घटना की अभिव्यक्ति की है। लार्ड चांसलर को सम्बोधित करते हुए, उसने एक कविता लिखी जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं।

तेरे देश का शाप तुझ पर है, न्याय बेच दिया,
सत्य कुचल दिया, प्रकृति के पवित्र चिह्नों को मिटा दिया,
और कपट से बटोरी गई स्वर्ण राशियों, के,
ध्वंस के सिंहासन पर गर्जना के स्वर में करती हैं वकालत !"

'मास्क आफ ऐनार्की' शीर्षक अपनी १८१६ की रचना में लार्ड ऐल्डन को इन शब्दों में याद किया है :

---

[1]इसके एक सप्ताह पश्चात्, शेली और मेरी की प्रेमभाजन, भावुक फेनी ने भी अपने शरीर का आत्महत्या द्वारा अंत कर लिया-कुछ लोग इसका कारण शेली से असफल प्रेम करने, अन्य श्रीमती गोडविन के व्यवहार को उत्तरदायी बताते हैं।

"इसके बाद 'कपट' आया, जो होने में था बड़ा कुशल,
'लार्ड ऐल्डन' के समान फर चोगा, पहिने हुए धवल,
एक-एक आँसू चक्की का पाट बना गिरता भूपर!
छोटे-छोटे बच्चे जो उसके समीप थे खेल रहे!
आते उन्हें उठाने, हीरों की प्रतीति में झेल रहे!
माथे पर वे चोट, कपट के अश्रुविन्दु से टकरा कर"

इसी संग्रह में संकलित 'विलियम शेली के प्रति' शीर्षक कविता में भी इसका अत्यंत स्पष्ट संकेत दिया है।

लंदन में रहते हुए शेली का परिचय तत्कालीन निबंधकार और कवि ले हन्ट' से हो गया जो आगे चल मृत्युपर्य्यंत की प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हुआ। 'ले हन्ट' के ही यहाँ, शेली की भेंट ५ फर्वरी १८१७, को, जॉन कीटस से हुई, दोनों में घनिष्ठ मित्रता नहीं थी, पर स्नेह सम्बंध अवश्य था। यह काल और भी दृष्टियों से महत्वपूर्ण है, इन्हीं दिनों शेली का विवाह भी धार्मिक रीति से 'सम्पन्न' हुआ, क्योंकि यह डर हो चला था कि कहीं शोषक, 'विलियम' को भी न छीन लें। इस विवाह से शेली गोडविन का 'वैध' जामाता हो गया। और दोनों के सम्बंध भी पुनः अच्छे होगये।

इस काल में शेली ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया। 'प्रिंस ऐथानीज' 'रोजालिण्ड एण्ड हैलेन' 'लाओं एण्ड सिन्थिया'—जो बाद में 'रिवोल्ट आफ इसलाम के' नाम से प्रकाशित हुआ, इसी काल की रचनायें हैं। इनमें अन्तिम बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें सुधारक शेली और कवि शेली ने मिल कर क्रान्ति की एक तस्वीर पेश की है—जिसका कथा प्रवाह रोचक है, पर काव्य की दृष्टि से अनेक स्थल महत्व के हैं।

२ सितम्बर १८१७ को मेरी के तीसरा शिशु एक लड़की पैदा हुई जिसका नाम 'क्लारा' रक्खा।

शेली का स्वास्थ्य फिर खराब हो चला था, हैरियट और फेनी की दुखद मृत्यु, बच्चों को छीने जाने का शोक, और तीसरे शिशु से भी वंचित किये जाने का भय, यह सब उसके बिगड़े स्वास्थ्य के कारण थे। उधर जैनी के सम्बन्ध में लार्ड बायरन से मिलकर बात करने की आवश्यकता थी। इङ्गलैण्ड की चप्पा-चप्पा भूमि नास्तिक और विद्रोही कवि को काटने दौड़ रही थी। इसलिए

१२ मार्च १८१८ को शेली अपने परिवार सहित इटली के लिए अपनी जन्म भूमि से प्रस्थान कर गया। जहाँ से वह फिर कभी न लौटा।

इटली का यह प्रवास शेली की काव्य-कला को परिपक्वतर बनाने में बड़ा सहायक हुआ। इटली की सुरम्य भूमि की नयनहारी सुषमा के बीच अनेक प्रसिद्ध कविताओं का प्रणयन हुआ। यह दिन उसकी रचना काल के चरम उत्कर्ष के दिन थे।

लार्ड बायरन से शेली अकेले ही मिलने गया; वह उन दिनों 'रेवन्ना' में था। बायरन ने 'एलोगोरा' (क्लेरा से अवैध पुत्री) को सुदूर एक कारागृह जैसे एक कान्वेन्ट में भेज दिया गया, जहाँ उसकी कुछ वर्ष पश्चात् महामारी के प्रकोप में मृत्यु हो गई। इन दिनों शेली को बायरन के स्वभाव को निकट से परखने का अवसर मिला। बायरन के क्लेरा और एलोगोरा के प्रति कठोर व्यवहार ने उसे शेली की आँखों में गिरा दिया। यों उनकी परस्पर मित्रता बनी रही। इन्हीं दिनों इटली के भिन्न भिन्न प्रदेशों में घूमते हुए उनके दोनों बच्चों का देहान्त हो गया। लेकिन १८१९ में मेरी के चौथा बालक, एक पुत्र पैदा हुआ। जिसका नाम पर्सी फ्लोरेंस शेली रखा जो शेलियों के वंश को चलाता हुआ १८८९ ई० तक जिया।

यहाँ के प्रमुख मित्रों में बायरन के अतिरिक्त गिसबोर्न-परिवार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसकी एक कविता जो श्रीमती गिसबोर्न को एक पत्र रूप में लिखी थी। उसके जीवन-विषयक अनेक तथ्यों पर प्रकाश डालती है। यहीं उनका परिचय एक इटैलियन निम्न वर्ग की महिला सुन्दरी 'कोन्टेसीना विवियानी' से हुआ, जिसके दैनिक प्रेम की प्रेरणा 'एपिपसाइसीडियन' (१८२० ई०) के काव्य में प्रस्फुटित हुई। इस काव्य में प्रेम की 'प्लेटोनिक प्रेम' की बड़ी मर्मस्पर्शी व्यंजना हुई। पर इससे पूर्व शेली की अनेक महत्वपूर्ण रचनायें लिखी जा चुकी थीं। 'जूलियन और मंडालो' (१८१८ ई०) में शेली ने अपनी और बायरन की एक सायंकाल की बातचीत को ही पद्यरूप में अभिव्यक्त किया है। 'बाथ आफ कैराकेला' के ध्वंसों के बीच शेली के अमर काव्य 'प्रोमेथियस अनबाउण्ड (१८१९ ई०) के तीन खंडों की रचना हुई। यह काव्य प्रमुख रूप से प्रगीतमय है, प्राचीन ग्रीक कथा का आश्रय लेकर शेली की कल्पना समूचे दिग्दिगंत को अपनी दृश्य-परिधि में बाँध कर अमर मानवता की मुक्ति का महागान गाती

हुई, काव्य-शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँची है। यह अमर कवि की अमर रचना है, और विश्व-काव्य-कानन का अन्यतम पुष्प है। हमारे 'धरती-माता' तथा प्रगीत अंश इस गौरवशाली काव्य का प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हैं, इसकी पूर्ण शक्ति का अनुभव समग्र काव्य के अध्ययन से ही हो सकता है।

यह काल इंग्लैण्ड तथा मध्य यूरोप में उथल पुथल का काल है। १८१६ के पीटरलू (मैनचेस्टर) में हुए मजदूरों पर गोली कांड ने, पहले श्रमिक वर्ग के संगठित आन्दोलन ने शेली की कविता धारा को नई शक्ति दी। इस हत्याकांड पर उसने प्रसिद्ध 'मास्क आफ ऐनार्की' की रचना की। हमने इसी संग्रह में 'आह्वान' शीर्षक से उसके कतिपय पदों का अनुवाद किया है, जो शेली के बढ़ते हुए समाजवादी दृष्टिकोण का व्यक्तीकरण करता है। इसी कविता के साथ इसी काल की उल्लेखनीय अन्य कविताओं में 'कैशरलिय के शासन' में, 'इंग्लैण्ड के मनुष्यों से', 'इंग्लैण्ड १८१६', 'स्वाधीनता के रक्षकों से' शीर्षक राजनीतिक कविताएँ हैं। वर्ड्सवर्थ के 'पीटर बैल-द फर्स्ट' पर लिखा शेली का व्यंग काव्य, पीटर बैल-द थर्ड, इसी काल की बेजोड़ व्यंग-रचना है। १८२० ई० के वर्ष में शेली के सर्वप्रसिद्ध लघुगीत और प्रगीतों का—'पाश्चात्य प्रभंजन' के प्रति, 'बादल,' 'अबाबील' 'स्वाधीनता के प्रति' नैपिल्स के प्रति, इत्यादि का प्रणयन हुआ। बृहद काव्य में, 'विच आफ ऐटलस' 'ऐपिपसाइशीडियन' और व्यंग 'काव्य 'स्वेलोफुट-द टाइरेन्ट' प्रमुख हैं। २३ मई १८२१ को रोम में कीटस की उसके क्षय रोग एवं आलोचकों की निन्दात्मक आलोचनाओं से, मृत्यु हो गई, जिस पर शेली ने अपना शोककाव्य 'ऐडोनेस' लिखा—जो अँगरेजी साहित्य में शोकगीतों (ऐलेजी) में सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। इस काव्य में मानवीय संवेदना अत्यंत उत्कृष्ट कलात्मकता के साथ प्रकट हुई है। इसी वर्ष शेली की मित्रता 'पीसा' में यूनान के विद्रोही राजकुमार प्रिंस अलेक्जेन्डर मार्वोकोवाडाटो से हुई, जिसकी प्रेरणा से हेलास (१८२० ई०) काव्य की रचना हुई—जो इसी मित्र को ही समर्पित किया गया है—'हैलास' शेली की 'हैलेनिक कल्चर' को अनूठी श्रद्धांजलि है, उनके नये जागरण का—जिसका नेतृत्व उसी ग्रीक प्रिंस के हाथ में था—काव्य है। यहाँ इस काल के एक और मित्र परिवार का उल्लेख अत्यावश्यक

है, वह है विलियम और श्रीमती जेनी विलियम। शेली की अन्तिम काल की रचनाओं में लगभग आधा दर्जन कवितायें इन्हीं को संबोधित करते हुए लिखी हैं। यह परिवार शेली परिवार के अन्तिम समय तक साथ रहा। इनमें परस्पर अत्यंत स्नेह और घनिष्ठता थी। इन्हीं के द्वारा शेली का परिचय, उसके अन्तिम काल के मित्र और बाद के जीवनी लेखक 'ट्रिलोनी' से हुआ। ट्रिलोनी, विलियम का पुराना मित्र था, यह देश विदेश का साहसी घुमक्कड़ यात्री, साहित्य से भी परम अनुराग रखता था। शीघ्र ही, कवि से इसकी प्रगाढ़ मित्रता होगई और उनकी गोष्ठी में उसने अपना प्रमुख स्थान बना लिया। ट्रिलोनी ने अपने संस्मरणों में कवि से प्रथम भेंट का बड़ा रोचक वर्णन किया है। वह लिखता है—

"हम लोग (ट्रिलोनी, श्री, एवं श्रीमती विलियम) बैठे बात चीत कर रहे थे। मैं चौंक उठा—अन्धेरे में दो आँखें चमक रही थीं श्रीमती विलियम मेरी आँखों का अनुसरण करती हुई और द्वार पर जाती हुई हँसती बोली, "आओ न शेली! ये हमारे मित्र 'ट्रि' हैं," अभी आये हैं।"

"द्रुत गति से निःशब्द आते हुए लड़कियों के समान झेंपते हुए एक लम्बे पतले से व्यक्ति ने प्रवेश किया और यद्यपि मैं उसकी ओर देख कर शायद ही विश्वास कर सका कि यह भी कोई कवि हो सकता है तो भी मैंने प्रसन्नता से हाथ मिलाया। मैं आश्चर्य से अवाक था, क्या यह विनम्र स्मश्रुविहीन लड़का भी वह दुर्दम दानव हो सकता है, जो सारी दुनिया से लोहा ले रहा हो? चर्च के पादरियों द्वारा बहिष्कृत, लार्ड चाँसलर द्वारा नागरिक अधिकारों से वंचित और हमारे साहित्य के प्रतिद्वन्द्वी संतों द्वारा 'शैतान स्कूल के संस्थापक के रूप में निन्दित।'······अवश्य यह सब छल है। उसकी आदतें लड़के जैसी थीं। दर्जी द्वारा बेढंगी सिले काली जाकिट और पायजामा पहिने था। श्रीमती विलियम ने मेरी परेशानी को भाँप लिया, मुझे छुटकारा देने को उससे पूछा 'कौनसी पुस्तक है हाथ में? उसका चेहरा खिल उठा, तुरन्त उत्तर दिया,

"कौल्डरेन की 'मेजीको प्रोजीडियोको' में इसका अनुवाद कर रहा हूँ।"

'तो पढ़ो कुछ हमें भी '

अपने अरुचिकर साधारण घटनाओं के तट से हट कर जैसे वह निज प्रिय वस्तु को पा गया। तब सिवाय पुस्तक के कुछ और ध्यान न रहा। जिस अधिकारपूर्ण ढँग से उसने लेखक की प्रतिभा का विश्लेषण, कथा की सरल व्याख्या और जिस सहज भाव से स्पेनिश कवि के अत्यंत गम्भीर और कल्पनापूर्ण पदों का अङ्गरेजी में अनुवाद किया, वे अद्भुत थे!

इस स्पर्श के पश्चात मुझे उसकी पहिचान में संदेह न रहा। एक गहरी खामोशी छा गई। ऊपर दृष्टि उठा कर मैंने पूछा, 'कहाँ है वह?'

श्रीमती विलियम बोली, "कौन? शेली! अरे, वह तो प्रेत के समान आता और चला जाता है, कोई नहीं जानता कि कब और कहाँ?"

इससे पूर्व, अगस्त १८२१ में ग्भूसियोली पेलेस में वह बायरन का अतिथि रहा, जहाँ दोनों ने मिल कर ले हन्ट को इंगलैण्ड से बुला कर 'लिबरल' नाम से एक पत्र निकालने का निश्चय किया। ५ जुलाई १८२२ को हंट आ गया। शेली अपने मित्र से मिलने, 'कासामेग्नी' से (जहाँ, शेली और विलियम के परिवार रहते थे) पीसा गया। ७ जुलाई को तीनों मित्र पीसा में घूम रहे थे। सहसा शेली ने हंट की ओर मुड़ कर कहा, "यदि कल मारा भी जाऊँ तो भी अपने पिता की आयु से अधिक जी लिया। मेरी आयु नव्वे वर्ष की है[1]।"

कैसी भविष्य वाणी थी!

जुलाई ८, को अपनी छोटी सी नौका पर, बैठकर शेली और विलियम, अपने तरुण माझी, चार्ल्स के साथ 'कासामेग्नी' चल दिये। समन्दर में तूफान उठरहा था। छोटी सी नौका की क्या बिसात?

[1]इसके कुछ बरस पश्चात्, एक पादरी के सामने 'पाप स्वीकारोक्ति' में एक मल्लाह ने बताया, जिसमें पता चला कि शेली की तूफान में घिरी नाव पर इटैलियन जलदस्युओं ने लार्ड बायरन की नौका समझ कर, सोने के लालच में आक्रमण किया था। यदि उपरियुक्त बात सच है तो इससे यही पता चलता है कि ऐसी असाधारण की मृत्यु क्या यों साधारण तरीके से होती?

अपनी कविता में अनेक स्थानों पर समन्दर की लहरों में खोजाने की कामना की थी।[1]

कवि की कामना पूर्ण हुई।

मृत्यु से कुछ दिन पूर्व, 'जीवन की जय' शीर्षक कविता लिख रहा था, कि मृत्यु द्वारा वह जय कर लिया गया। कविता का अंत इन पंक्तियों द्वारा होता है,

तब जीवन क्या है ? मैं चिल्लाया।

इसका उत्तर वह मृत्यु में खोज रहा था।

कई सप्ताह की द्विविधा के पश्चात् लाशों का पता लगाया गया। जुलाई १७, और १८ को तीनों की लाशें निकलीं। सभी के शरीर क्षत विक्षत हो चुके थे। शेली की एक जेब में सोफोक्लीज का ग्रंथ था और दूसरे में 'हंट' की दी गई कीट्स की एक कविता पुस्तक थी, जो 'द ईव आफ सेन्ट ऐग्नस' पर मुड़ी हुई थी।

बालू पर शेली की चिता जलाई गई। बाइरन ने कहा, "क्या है मनुष्य का शरीर ?··· देखो ! यह पुराना चिथड़ा इसके पहिनने वाले से अधिक दिन जिया।"

चिता जलरही थी······शेली के सुन्दर कपाल को बायरन ने निकालने का प्रयत्न किया, तभी कड़क कर फूट गया ·····पर उसका विशाल हृदय नहीं जला। ट्रिलोनी ने लपटों में हाथ डालकर हृदय को निकाल लिया, जो बाद में मेरी को भेज दिया गया और भस्म को, रोम के एक पुराने कब्रिस्तान में, जिसके पास ही कीट्स भी लेटा है, और जिसके फूलों और पत्तियों का वर्णन अपने पत्र में इतनी रोचकता से किया है, दफना दिया गया।

और इस प्रकार इस महान कवि और महानतर मानव का असमय में ही देहावसान होगया।

---

[1] "···जब तक न सुनूँ मैं अपने मरते मानस पर
लेते हुए समन्दर को अंतिम निश्वास घुटन से भर"
—(नैपल्स के निकट लिखित पद)

जीवन भर वह निन्दा, उपेक्षा, घृणा, संघात और प्रवंचना सहता रहा, पर मनुष्य जाति के प्रति उसने कभी अपने प्रेम को कम नहीं होने दिया। कष्ट के झंझावात में उसके विश्वास की वर्तिका कभी नहीं बुझी। उसके मुख पर चरित्र और बुद्धि की गहरी छाप थी। वह उदारता असांसारिकता और निःस्वार्थता की साक्षात मूर्त्ति था। शारीरिक और नैतिक साहस उसके अन्दर चरम सीमा में थे। जीवन के प्रारंभ से ही वह सब प्रकार की निरंकुशाता और बंधनों के विरुद्ध विद्रोह करता आया था, और अंत तक अडिग रहा। सत्य का इतना एकान्तनिष्ठ साधक शायद ही किसी युग में पैदा हुआ हो। स्वाधीनता की पुकार उसके रोम रोम में व्याप्त थी। वह अत्यंत विचारवान और वैज्ञानिक बुद्धि का दार्शनिक था। अपने विचारों को भली भांति प्रकट करने की उसके अन्दर प्रखर प्रतिभा थी। साथ ही, दूसरों के दृष्टिकोण को सुनने और समझने में अत्यंत सहिष्णु था। बायरन, जो उसे उसकी चमकीली आँखों, पतली काया, चापहीन गति, तथा अल्पाहारिता के कारण 'साँप' कहकर पुकारता था, उसका अत्यंत सम्मान करता था। उसके शब्दों में, शेली, "अत्यंत सज्जन, अत्यंत विनम्र, और अल्पतम सांसारिक बुद्धि का मनुष्य था। कोमलता से पूर्ण और सबसे उदासीन। उच्च प्रतिमा के साथ थी उसमें अत्यंत सर-लता, जो जितनी ही प्रशंसनीय है, उतनी ही विरल, वह था सर्वोत्कृष्ट, उच्चतम आदर्श सौन्दर्य का साक्षात प्रतीक, इस आदर्श का उसने जीवन भर अक्षरशः पालन किया।" इससे अधिक उसके बारे में क्या कहा जासकता है?

"अत्यंत प्रदीप्त नक्षत्र,
जीवन स्रोत को पीने के लिये,
इतना उन्मत्त।"
निष्प्रभ होगया। उसके
प्राणों की तरणी, तटसे,
दूर धकेली गई, सुदूर काँपते जन-संकुल से,
कभी नहीं झंझाके सम्मुख, जिसके पाल झुके थे! (एडोनेस)

3075

शेली की काव्य-साधना

"अहो, महा मानस!

तेरी गम्भीर थाह में,

यह युग हिल उठता है, अवहेलक झंझा में—

बजती बाँस-नली है जैसे!"

(काव्यांश १८१८)

(१) विषय प्रवेश—

अङ्गरेजी आलोचक और निबंधकार चेस्टरटन का कथन है कि अङ्गरेजी साहित्य की महानतम घटना इङ्गलैण्ड के बाहर ही घटी और यह घटना थी फ्रांस की राज्य-क्रान्ति, जिसका अत्यन्त व्यापक प्रभाव तत्कालीन अङ्गरेजी साहित्य पर पड़ा और बहुत काल तक फ्रांस इङ्गलैण्ड के आकर्षण विकर्षण का केन्द्र बना रहा। यों, इङ्गलैण्ड में भी इस राज्य क्रान्ति के पूर्व मानववादी परम्परा का उन्मेष हो चुका था। परम्परावादी कवि पोप की कविता की प्रतिक्रिया 'कूपर', 'काबेट' और 'ब्लेक' के काव्य में जन्म ले चुकी थी। ग्रे की एलेजी में ग्रामीण जनता के प्रति संवेदना के भावों की अभिव्यक्ति हुई। राबर्ट बर्न्स के काव्य में तो कविता धरती पर उतर आई और सरल ग्राम्य जीवन की श्री विहग के कलरव सी मुखरित हो उठी। ग्राम्य लोकगीतों के संकलन पर्सी की रैलिक्स ने कविता के प्रकृत स्वरूप को प्रस्तुत कर अपनी गहरी सहज संवेदना से तरुण हृदयों में हलचल मचादी! यही परम्परा आगे चल कर अङ्गरेजी साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण-युग—रोमानी काल की जननी हुई। इसकी पहली पीढ़ी में वर्ड्सवर्थ, कालरिज, और स्कॉट प्रमुख थे, यह राज्य क्रान्ति के समकालीन थे। इनमें से वर्ड्सवर्थ और कालरिज ने विप्लव का अपने गीतों से अभिनन्दन किया। इन स्वरों में इङ्गलैण्ड का नवोन्मेषित पूँजीवाद बोल रहा था जो अभी विकास के मार्ग खोज रहा था। इङ्गलैण्ड के सामन्तीय ढाँचे की नीवँ अभी इतनी कमजोर नहीं हुई थी। शासक वर्ग फ्रांस की अपेक्षा अधिक सशक्त और सतर्क था। रूढ़िवादी लेखक बर्क के नेतृत्व में क्रान्ति विरोधी खूब विष उगल रहे थे। जनबल के संगठन का कोई स्पष्ट चित्र इस पीढ़ी के समक्ष नहीं था। बाह्य परिस्थितियाँ भी अभी अनुकूल नहीं थीं। अतः इसका परिणाम यह हुआ कि यह पीढ़ी शीघ्र ही अपने अभिनन्दन गीतों के लिए पश्चात्ताप करने लगी। और राज क्रान्ति की 'असफलता' ने इनमें निराशा भर दी। वर्ड्सवर्थ ने संघर्ष पथ को छोड़ पलायन पथ को ग्रहण किया और अपने अन्त समय तक प्रतिक्रियावादी बना रहा। पर वास्तव में क्रान्ति असफल नहीं हुई थी। क्रान्ति का अभी यह प्रथम चरण था। इसमें पूँजीवादी नेतृत्व में जनता ने सामन्ती हाथों से सत्ता छीनी थी। दूसरा चरण तब पूरा होता जब सत्ता पूँजीवादी हाथों से छीनी जाती। पर इसके

लिए अभी परिस्थितियों का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। अभी संघर्षशील वर्ग श्रमिक वर्ग संगठित अस्तित्व में नहीं आया था। क्रान्ति का यह चरण अभी जारी है। पिछली क्रान्ति अपने उद्देश्य को पूरा करने में सफल हुई थी पर जिन्हें मानव जाति के क्रमिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन नहीं था, उन्होंने इस 'असफलता' से मानव जाति में अपनी अनास्था प्रकट कर 'प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन' का नारा लगाया।

इनके दो दशक पश्चात् रोमानी काल की दूसरी पीढ़ी, छोटी पीढ़ी प्रकाश में आई, जिनके लिये राज्य क्रान्ति एक वास्तव घटना न होकर इतिहास का एक परिच्छेद बन चुकी थी। पर क्रान्ति के ज्वालामुख के हड़कम्प की थरथराहट अभी वातावरण में वर्तमान थी। 'असफलता' की प्रतिक्रिया वातावरण में गहरी निराशा भर गयी थी। पर अब पार्थिव परिस्थितियाँ इन दो दशकों में काफी बदल चुकी थीं। पूँजीवाद अब एक शक्ति के रूप में विकसित हो रहा था। राजतंत्र और सामंतवाद विश्रंखलित होकर पतनोन्मुख थे। फलस्वरूप, नई शक्ति की चेतना उठ रही थी, जिसका इस पीढ़ी को ज्ञान था और अपने अपने दृष्टिकोण से युग की विद्रोही प्रवृत्तियाँ इनके काव्य में स्वर पा रही थीं। इस पीढ़ी की एक और विशेषता यह थी कि इसका विकास लगभग असम्पूर्ण रह गया। अत्यन्त अल्पावस्था में ही इसके विकास की अपरिसीम शक्तिमत्ता प्रतिभायें असमय में ही मरण-सिंधु की हिलोरों में खो गईं। इस पीढ़ी में प्रमुख थे लार्ड बायरन, पर्सी विशी शेली और जॉन कीट्स! इन तीनों में कीट्स की मृत्यु अल्पतम आयु (२५ वर्ष) में हुई। उसकी कविता के विकास की सभी दिशायें लगभग अपूर्ण हैं। सबसे अधिक अवस्था (३६ वर्ष) लार्ड बायरन ने पाई। और परिपक्वता की दृष्टि से उसे इन सबसे अधिक अवसर मिला। एक दृष्टि से उसका विकास पूरा हो भी चुका था। शेली की मृत्यु इन दोनों के विपरीत एक दुर्घटना में हुई, तब वह तीसवीं में प्रवेश कर रहा था। पर वास्तव में उसे विकास का सबसे कम अवसर मिला क्योंकि उसकी प्रतिभा की शक्तियाँ इन दोनों की अपेक्षा जटिल और आकांक्षायें अधिक व्यापक थीं। वह मृत्यु के समय अपनी परिपक्वता के चरण में प्रवेश कर रहा था। इस अवस्था तक उसकी प्रतिभा अनुभवों की आँच में निखर आई थी। जीवनी लेखक जे०

ऐडिंगटन साइमोण्ड के अनुसार अपने जीवन के अन्तिम चार वर्षों में वह और भी अधिक निखर उठा था। आग की प्रखरता और भी बढ़ रही थी। चरित्र और भी पुष्ट और प्रतिभा सम्पुष्टतर हो रही थी। वह अपनी सबसे गौरवशाली प्राप्ति के शिखर पर खड़ा था। अपने पंख खोले और भी ऊँची उड़ान भरने को तत्पर था। ऐसे क्षण में जबकि जीवन उसे आराम, कार्य की अनथक शक्ति और सुख देने को था, काल ने उसके परिपक्व संसार को छीन लिया। भविष्य के पास तो उसकी अपरिपक्व काल की उत्पत्ति और उसके अन्त समय का शोक ही है।

(२) विप्लव की मूर्त्ति शेली—

पर उसकी इस अविकसित अवस्था में भी जो कुछ हमें मिलता है, उसके भविष्य का स्पष्ट संकेत देने के लिये, उसे अमरता के आसन पर प्रतिष्ठित करने के लिये पर्याप्त है। उसके स्वरों में हम मानवता की तीव्रतम अनुभूतियों का, वेदना, प्यार और विद्रोह का उच्चतम स्पन्दन सुनते हैं! उसके अन्दर जीवन और बुद्धि के प्रति अनन्य भक्ति थी। वह मानव जाति की उन विरल मूर्त्तियों में से था, जिनको तर्क और अनुभूति तरुणाई के साथ-साथ क्रान्तिकारियों में परिवर्तित कर देती है। अत्यंत मेधावी, भाव प्रवण और उद्दीप्त स्वभाव का होने के कारण वह अति आरंभ से ही क्रान्ति के प्रभाव में आ गया था। उसकी क्रान्ति में, यद्यपि अठारहवीं सदी की सभी मर्यादाएँ वर्तमान थीं। गौडविन और प्लेटो के अतिशय प्रभाव ने इनको और बढ़ा दिया था। तो भी, इन सबके होते हुए भी उसके अन्दर समाज की प्रगतिशील शक्तियों का प्रतिनिधित्व है, और क्रमशः उसके काल्पनिक आदर्शों और आकाशीय उड़ानों का ह्रास एवं उत्तरोत्तर यथार्थवाद और मानववाद का स्वरूप दिखाई देता है।

लार्ड बाइरन के विद्रोह का स्वरूप शेली की अपेक्षा बहुत कुछ स्पष्ट है। बायरन भी शेली के समान अभिजातीय वंश में पैदा हुआ था। अपने विशाल राजनैतिक अध्ययन और धनाकाशी, सचेत व्यवहार बुद्धि के कारण शेली से कहीं अधिक इस तथ्य की जानकारी थी कि उसके वर्ग का अब शक्ति रूप में ह्रास हो गया है। अपने काव्य में अभिजात वर्ग की नैतिक मान्यताओं की उसने खूब खिल्ली उड़ाई है। वह यद्यपि शेली के समान पूरी तरह अपने वर्ग से असम्बद्ध नहीं

हो पाया था, अपने दर्प और पाशव असंयम में वह अभिजात वर्ग से अपने आपको जोड़े हुए है, और न शेली के समान उसका मान ही जन जीवन में रमता था, पर उसके अन्दर अवश्य ही प्रखर क्रान्तिकारी व्यक्तित्व था, जो बहुत कुछ उसकी चारित्रिक असंयतता के प्रवाह में दूसरी दिशा में मुड़ गया था। अपने उत्तर काल में, मृत्यु से कुछ बरस पूर्व, जब उसके इस वेग में 'काउन्टेस ग्यूसिआलो' के सम्पर्क से स्थैर्य आ गया था, इस व्यक्तित्व को उभरने का मौका मिला। उसने शेली के समान अपने काव्य में 'स्वाधीनता' का नाद गुँजाया, पर शेली से और दो कदम आगे बढ़कर इटली और यूनान के स्वातंत्रिय संघर्षों में सक्रिय सहयोग किया। यूनान के आजादी के आन्दोलन के मध्य ही ज्वराक्रांत होकर उसकी मृत्यु हो गयी, जिसे समस्त यूनान ने अपने 'राष्ट्रीय शोक' के समान मनाया। बायरन के इस व्यक्तित्व की न केवल सभी बुर्जुआ आलोचकों ने उसकी 'सनक' कहकर अवहेलना की है, वरन्, यह मार्क्स का जर्मन भाषा में 'शेली एक 'समाजवादी' शीर्षक निबंध में, यह मत द्रष्टव्य है।

'जो लोग शेली और बायरन के काव्य से परिचित हैं, वे शेली की अल्पायु मृत्यु पर उतना ही दुख प्रकट करेंगे, जितना कि बायरन की' पर उन्हें हर्ष होगा।

प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक स्व० कॉडविल ने भी इसी दृष्टि से अपनी काव्यालोचना पुस्तक 'इल्यूजन एण्ड रियलिटी' में बायरन के विद्रोही पक्ष को 'सनक और रोमान्सवाद का मिश्रण' बताया है, जो 'अभिजात वर्ग की पाँत में जहाँ एक ओर फैली निराशा की सूचना देता है, यहाँ दूसरी ओर उसके प्रति विद्रोह भी है। और ऐसे लोग 'क्रान्ति के निराशनायक की धारणा से अधिक ऊँचे नहीं उठ सकते'

पर बायरन के काव्य को उदारतापूर्वक परखने से उसकी क्रान्तिकारिता की सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। उसके 'चाइल्ड हेरोल्ड', 'डानजुआन' 'अपनी मूढ़ जाति के अवशेष' राजों और सत्ताधीशों के ऊपर की गई सीधी-सीधी व्यंग बौछार से भरे पड़े हैं।

> ''जब मनुष्य इन दुष्ट नृपों को नियम भंग करने देते हैं;
> तो 'देवता' सोते सा, मेरा खून खौल, खौल, उठता है''

इन पंक्तियों के लिखने वाले की अल्पायु मृत्यु पर हर्ष नहीं प्रकट किया जा सकता।

"पानी के समान खून बरसेगा, और कुहासे के समान आँसू, पर अन्त में जीत जनता की होगी। मैं नहीं रहूँगा यह देखने के लिये, पर मैं इसे अपनी दूरदृष्टि से देखता हूँ।"

जो जनता की जीत इस अदम्य विश्वास से मना सकता है, वह अवश्य क्रान्तिकारी है।

जॉन कीट्स के काव्य में उसके सभी विकास चिह्न असम्पूर्ण हैं, इसलिए उसके विषय में कोई निश्चित् धारणा बना लेना आसान नहीं है। पर तो भी उसके काव्य में अनेक स्थलों और पत्रों से यह प्रकट होता है, कि उसका दृष्टिकोण काफी सुलझा हुआ था। वही सबसे प्रथम महान् कवि है, जिसे इस बात का भी ध्यान रखकर चलना पड़ता है कि उसकी कविता बाजार में बिकेगी और जीविका का साधन बनेगी। यह तथ्य उसे अपनी समाज व्यवस्था की अधिक से अधिक जानकारी देता है। राज्यक्रान्ति से विमुख होने वाले वर्ड्सवर्थ इत्यादि के लिये जो, अपने प्रतिगामी स्वरों में ऊँची नैतिकता का राग अलाप रहे थे, वह लिखता है—

"इस ऊँचाई को कोई नहीं छीनेगा" छाया चली गई।

"सिवाय उनके, जिनके लिये जगती का दैन्य, है अब भी दैन्य ही और न करने देगा उन्हें आराम।"

उसकी कविता का प्रारंभ ही, शासन के विरुद्ध विद्रोह से हुआ था। अपने मित्र और पथ-प्रदर्शक, ले हन्ट की गिरफ्तारी पर उसने पहली कविता लिखी थी। पर कीट्स की क्रान्ति भी अंततः वर्ड्सवर्थ की भांति कल्पनामय थी। वर्ड्सवर्थ का पलायन प्रकृति की गोद में था, कीट्स का पलायन जगत उसकी नई शब्दावलि, रत्न-जड़ित, वर्णगंधमय, सौन्दर्य का विश्व है। क्रिस्टोफर कॉडवेल के शब्दों में—

"काव्य के नूतन जग में प्रविष्ट कीट्स कार्तेज के सदृश निहारता है। पुरातन के वेष से मुक्ति देने को चैपमैन के स्वर्ण प्रदेशों का अस्तित्व

प्रसूत हुआ, पर कितना ही इसमें यात्रा की जावे, है तोभी यह केवल कल्पना का जगत ही ।"

(इल्यूजन एण्ड रियलिटी)

वास्तव में, इन रोमानी कवियों का पलायन नव पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध उठते नई चेतना के संघर्षों से पलायन है, उनका क्रान्तिकारिता सामन्तीय और वणिकवादी व्यवस्था से इस शक्ति के जूझते रहने तक ही होती है। किन्तु इनमें शेली अपवाद है, उसका काव्य इसके विपरीत, अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद अत्यंत स्वाभाविक क्रान्तिकारी भावनाओं और संघर्षशील प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है। उसके विप्लव का अनल गान पूँजीवादी शक्ति की जय तक ही गूँज कर नहीं शीतल हो जाता, वरन् सर्वहारा वर्ग की नई शक्ति का, अपनी व्यवस्था के निर्माण करने के लिये आह्वान गीत बनकर उठता रहता है। उसमें पलायन लेशमात्र भी नहीं है। उसका व्यक्तित्व अपने युग की सबसे प्रबल क्रान्तिकारी शक्ति के रूप का प्रतीक है।

(२) युग का गायक–

शेली के विद्रोही काव्य में उसके युग का मूर्त्तिमान स्वरूप अङ्कित है। उसके अन्दर पुराने युग के ध्वंस की राख का ठण्डापन है, नई चिनगारियों की गरमाई है। उसकी प्रखर दृष्टि ने समाज की इमारत का कोना कोना छान डाला है, उसकी असीम कल्पना-शक्ति प्रवृत्तियों के सूक्ष्मतम स्पन्दनों को अपनी गति में बाँध लेती है। उसकी प्रभंजन-शक्ति युग के आकाश पर छाये निराशा के बादलों को छितराती है, यद्यपि स्वयं धरती के व्यक्तिगत वेदना के जलाशयों से स्वयं भीगी भीगी रहती है, अपनी उद्दाम गति से कभी हरे किसलय से मोहित करने वाले, पर बाद में उन्हें कटीले पत्तों में बदल देने वाले विरवों का वह उपहास करती है, डाल से झरे जीर्ण पत्तों को उड़ाती हुई, नये बीजों का समाज-भूमि में वपन करती है। अपने समय की निराशा का चित्रण करते हुए शेली एक पत्र में लिखता है।

"निराशा और अमानवीयता इस युग की जिसमें कि हम रहते हैं, एक विशेषता हो गई है...। इस प्रभाव ने युग के साहित्य को भी उन मानसों को, जिनसे कि यह निःसृत होता है, निराशा से भर दिया है।"

शैली के समय तक शासन के संगठन के प्रति असंतोष बढ़ता जा रहा था। लोगों में भुखमरी फैल रही थी। पार्लमेन्ट पर सामन्तों का कब्जा था, जिसका एक मात्र उपयोग जनता के अधिकारों के कुचलने में होता था। लगभग दोसौ अपराध ऐसे थे, जिनके लिये फाँसी का दण्ड दिया जाता था, इनमें से एक जमीनदार की फसल की चोरी भी थी। आक्सफर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों पर चर्चों का निरंकुश अधिकार था। धर्म के विरुद्ध कहने का किसी को साहस न था। किन्तु इंग्लैण्ड में अब नई शक्तियाँ उभरने लगी थीं, जिनके साथ-साथ जनमानस में नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे थे। शैली, इस नूतन जीवन की अँगड़ाई से वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज के समान बेखबर नहीं था, वह लिखता है—

"...किन्तु मनुष्य जाति मुझे अब अपनी निद्रा से उठती हुई प्रतीत होती है। मैं उसके धीमे, शान्त और शनैः शनैः परिवर्तन से अवगत हूँ।"

अपने 'वर्ड्सवर्थ के प्रति' एक सॉनेट में, इस पलायनवादी कवि को सम्बोधित करते हुए कहता है,

एक हानि मेरी भी है।
जिसका अनुभव तुझे भी है, पर दुखी मैं ही हूँ!
तू था एक एकाकी सितारे की भाँति, जिसकी द्युति बिखरी थी
शरद निशीथ की गर्जना में, किसी जर्जर नौका पर!
अँधे और संघर्षशील जनसंकुल पर!
सम्मानित निर्धनता के मध्य तेरी वाणी में बुने थे
सत्यता और स्वाधीनता के गीत,
इन्हें तजकर, तू मुझे तजता है, शोक करने के लिये,
अतः तेरे होते हुए भी, तेरा होना अब रुक गया है!

वर्ड्सवर्थ के प्रति क्रियावादी काव्य 'पीटर बैल, द फर्स्ट' के शैली ने अपना प्रसिद्ध व्यंग-काव्य, पीटर बैल द, थर्ड' लिखा, जिसमें प्रतिक्रियावादी साहित्यिकों के साथ-साथ समूची सामाजिक व्यवस्था के खोखलेपन पर तीव्र व्यंग कसे हैं।

उससे बढ़कर साधारण जनता की गरीबी और बदहाली का किसी तत्कालीन कवि ने वर्णन नहीं किया। 'क्वीन मैब' में ऐसे अनेक पद भरे पड़े हैं, जिनमें जनता को नरक की यातना देने वाले सत्ताधीशों और धर्म का स्वाँग फैलाकर शोषण करने वाले पादरियों के खिलाफ अपने तरुण कवि ने तीव्र रोष का प्रदर्शन किया है। इग्लैण्ड की साधारण जनता के लिये लिखे गये गीतों में (सौंग आफ मेन आफ इग्लैण्ड) से एक सॉनेट '१८१६ में इग्लैण्ड' को देखिये—

'वृद्ध, विक्षिप्त, अन्ध, घृणित, और क्षयमान नृपति,
राजा, अवशेष अपनी मूढ़ जाति के, जो बहती है,
जन घृणा के द्वारा, पंकिल बसंत की पंक में!
शासक जो न देखते हैं, न अनुभव करते हैं, न जानते हैं,
किन्तु 'लीच' के समान, अपने मूर्च्छित देश से चिपटे हैं!
जब तक वे गिरे न रक्त में अंधन हों, बिना किसी प्रहार के"
एक जनता क्षुधित और घायल हुई अन जुते खेतों में,
एक सेना जो मुक्ति करती और बध करती है,
बनाती है एक दुधारी कृपाण के समान उन सबको जो रोकते हैं,
सुनहरे और लाल चमकीले कानून जो उकसाते और बध करते हैं,
धर्म ईसाविहीन ईश्वर हीन मुहर बन्द पुस्तक है,
एक सोनेट काल का अनढही निकृष्टतम मूर्ति,
यह कब्रें हैं जिनसे एक गौरवशाली प्रेत निकल सकता है,
हमारे झंझामय दिवस को ज्योतित करने।

१८१६ के पीटरलू गोली काण्ड पर लिखी गई 'मास्क' के कुछ पद देखिये।

दासता है यह काम करने के बाद दाम,
नित्य प्रति जीने भर के ही लिये पाते हो,
जैसे अन्ध कोठरी में, वैसे निज अङ्गों में ही,
शोषकों के लाभ हेतु वास किये आते हो!
'आह्वान'

और देखिये—

गधे और सूअर भी ठौर पाते हैं उन्हें
वक्त पर ठीक-ठीक खाद्य मिल जाता है!

घर तो सभी का है; अंग्रेज ! पर तू हा हा,
काम करने के बाद ठौर तक न पाता है !

(वही)

शीर्षक कविता में दासता और शोषण की इमारत के नीचे इस वर्ग भेद को पहिचानता है—

तुम बोते हो बीज काटते किन्तु दूसरे !
दौलत तुम खोजते और का घर है भरता !
कपड़े तुम बुनते पर और पहिनते फिरते,
अस्त्र ढालते तुम, पर और जिन्हें है गहता ॥

(इङ्गलैण्ड के मनुष्यों से)

वह ललकार कर कहता है—

बोओ बीज, न जुल्मी जिन्हें काटने पाये !
खोजो दौलत, पर न जाय वह ठग के घर में !
कपड़े बुनो ! आलसी कोई पहिन न पाये।
ढालो अस्त्र ! गहो अपनी रक्षा को कर में !

(वही)

अपने एक काव्यांश में निजी सम्पत्ति को सामाजिक सम्पत्ति बनाने का आह्वान करता है। 'विलियम शेली' शीर्षक कविता में शोषकों और धर्म ध्वजों की मृत्यु की घोषणा करते हुए कहता है कि—

सदा न जुल्मी राज करेंगे, तू मत डर,
कुपथ पुजारी सदा नहीं इस पृथ्वी पर,
खड़े हुए यह जहाँ क्रुद्ध नद के तट पर,
भर दी मौत इन्होंने जिसकी लहरों पर,
जिसकी भूख सहस्र खाड़ियों से गहरी,
इसके चारों ओर क्रुद्ध फेनिल लहरी।
इनके दुखद, कृपाण, भग्न नौकाओं से,
देख रहा मैं शाश्वत लहरों पर बहते।

'मास्क' के अन्तिम पद में जनता को संगठित होकर उठने का आवाहन करता है।

जागो ! सिंहों से दहाड़, छोड़ नींद छोड़ आज !
उठो ! अब अजेय संख्या में झूम-झूम कर !
शृंखलायें तुमने जो पहिनी थीं नींद में,
ओस बूँद सम हिला कर गिरादो भूमि पर;
तुम हो असंख्य और ये हैं बस मुट्ठी भर,

(आह्वान)

स्वाधीनता का अर्थ उसके लिए हवाई बातें या नैतिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि इसका ठोस अर्थ है जनता को रोटी, कपड़ा, रहने को मकान ! अन्यथा सब दासता है।

हे स्वतन्त्रता की देवि ! तू है मजदूर की,
रोटी जो कि रक्खी हुई एक स्वच्छ मेज पर
एक शुभ्र और सुख-पूर्ण गृह मध्य वह।
पाये उसे आये जब श्रम से ही लौट कर !

× × × ×

शासकों की ठोकरों से मस्त जन समूह को।
अन्न, वस्त्र और अग्नि तू ही है स्वतन्त्रता !
आज जैसा मेरा देश है अकाल-शाप-ग्रस्त
किसी भी स्वतन्त्र देश को हूँ मैं न देखता !

(वही)

क्या शेली की उस युग की वाणी में आज की हमारी तड़पती भारतीय जनता की पुकार नहीं है ?

शेली ने केवल अपने देश की ही जनता के लिए शोषकों के जुए से परित्राण पाने की कामना नहीं की, वरन् उसका स्वर देश और काल की मर्यादाओं को लाँघ कर देश-देश की, युग-युग की दलित मूक जनता की वाणी बन गया है। १८२० की स्पेन की सैनिक क्रान्ति का अभिनन्दन करते हुए उसने स्वाधीनता के प्रति एक बहुत बड़ी कविता लिखी। यूनान के विद्रोह के ऊपर अपने नाट्य काव्य 'हैलास' की रचना की थी। वह एक स्थान पर सारी दुनिया के शोषित वर्ग को, शोषकों के विरुद्ध उठ पड़ने के लिये ललकारता है, क्योंकि उन्होंने विप्लव के अंधड़ की सम्भावना से ही अपना पवित्र गठबंधन कर लिया है। ('रिवोल्ट' की भूमिका के अप्रकाशित अंश का सार) युद्ध को जनता को गुलाम और पंगु

बनाये रखने का शासकों और राजनीतिज्ञों का अस्त्र कह कर पुकारता है, मनुष्य-मनुष्य की स्वाधीनता के ऊपर, प्रेम, भाईचारे में स्थापित शान्ति की प्रस्थापना की बात स्थान-स्थान पर अपने काव्य में कहता है।

बंद करो ! क्या घृणा, मृत्यु, अब लौटेंगे ही ?
बंद करो ! क्या मनुज बँधेंगे या मृत होंगे ?
बंद करो ! तिक्ततर भविष्यत वाणी के इस,
भस्मसात्र का अंतिम कण तक नहीं पियो !
जगती अतीत से थकित आह ! मर जायेगी,
बनो इसको अपनी चिर थकन मेटने दो !

(हेलास)

नई दुनिया की तामीरें इस पुरानी दुनिया के ध्वंसों पर खड़ी होंगी, इसका उसे अदम्य विश्वास है।

'विश्व का नवयुग प्रारम्भ होता है फिर से ।'

शोषण और दासता के अलमबरदार शीघ्र रात की कालिख के समान अब विदा होनेवाले हैं !

'और निरंकुश, दास रजनि की छायाएँ अब !
तेरे भोर उजाले के रथ के पीछे भव !'

(४) गौडविन का अनुयायी—

विलियम गौडविन की वाणी में इग्लैंड में रूसो के विचार जन्म ले चुके थे। गौडविन ने रूसो की विचार-धारा को और तर्क संगत बना कर आराजक समाज की विशद रूपरेखा प्रस्तुत की। उसके 'पोलिटिकल जस्टिस' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ ने इग्लैंड के बौद्धिक समाज में बहुत दिनों तक हलचल मचाई। इसमें अराजक समाज की परिकल्पना के पीछे पुरानी सामन्तीय शासन व्यवस्था के प्रति गहरे असंतोष की अभिव्यंजना थी। धर्म के विकृत रूप और शोषण के स्तम्भों पर कठोर प्रहार था। इसलिये इस क्रान्तिकारी ग्रंथ का नई पीढ़ी पर व्यापक प्रभाव पड़ा। पर अन्य मानववादी दार्शनिकों की भाँति गौडविन की वही भूल थी। क्रान्ति की 'असफलता' ने उसका विश्वास भी जनबल से हटा दिया था। उसका कहना था कि जब तक

जनता शिक्षित नहीं होगी, तब तक उसे शोषण से परित्राण नहीं मिलेगा। अशिक्षा दासता का मूल है। शिक्षा से क्रान्ति होगी। शिक्षित व्यक्ति ही जनता का सुधार करेंगे। गौडविन का सुधार का तरीका यह था कि पहले शोषण और अन्याय की तस्वीर दिखाकर उनके अन्दर 'हृदय-परिवर्तन' करो, फिर स्वर्णिम भविष्य के अङ्कन से उन्हें सक्रिय करो, सत्ताधारी इस जागृति से तुरंत भाग जायँगे। अपनी तत्कालीन व्यवस्था से अत्यंत असंतुष्ट तरुण शेली को गौडविन की बनी बनाई व्यवस्था मिल गई और उसे आत्मसात् कर और उसमें प्लेटो (अफलातून) के प्रेम के सिद्धान्त को जोड़ कर अपने काव्य में, लेखों में तथा जीवन में उसको अभिव्यक्त किया। उसकी 'तर्क की वाणी' (जो 'क्वीन मैब' का एक अंश है) इस का समुचित प्रमाण है। उसके शोषकों और अत्याचारियों के विरुद्ध अग्नि-स्वरों के पीछे गौडविन के सिद्धान्तों की छाया है। गौडविन की भाँति आरंभ में वह भी जनता को अज्ञानियों का समूह मात्र कहता है, जिनके भाग्य विधाता या तो शासक हैं अथवा चंद शिक्षित लोग! 'रिवोल्ट' में उसका क्रान्ति का स्वरूप ऐसा ही है। जहाँ टर्की की जनता को 'लाओं' और 'सिन्थिया' मुक्ति दिलाते हैं। शेली के भी सुधार का यही ढँग है। यही भाव उसकी 'प्रोमे०' में है। आगे चलकर वह जनता के संघर्षों और अपनी तीखी वेदना से बहुत कुछ सीख चुका है, अब वह जनता को मात्र मृत्तिका का पिण्ड ही नहीं समझता, वह उसे अपने भाग्य का स्वयं निर्णायक बनने के लिये आह्वान भी करता है। किन्तु फिर भी वह 'रक्तहीन क्रान्ति' की धारणा से अपने को पृथक् नहीं कर पाया!

"जैसे वन होता है, सघन और स्वरहीन,
ऐसे तुम खड़े रहो, प्रशान्त दृढ़ चित्त से,
कर हों तुम्हारे बद्ध, और सब दृष्टियाँ हों;
बनती हैं तीक्ष्ण अस्त्र जो अजेय युद्ध के।"

(आह्वान)

अथवा

"हाथ जोड़ लो, हिले न दृष्टि रंच मात्र भी,
भय का निशान, विस्मय का न लेश हो,
उनकी ओर देखो, वध जैसे ही तुम्हारा करें।
उनका प्रचंड रोष जब तक न शेष हो।"

(वही)

(५) प्लेटोवादी : शेली—

गोडविन के समान प्लेटो का भी शेली ने बचपन से ही अध्ययन और मनन किया था। उसकी प्रांजल शब्दावलि और रूपकमयता से वह बड़ा प्रभावित था। शेली की सामाजिक, राजनीतिक धारणाओं, कविता और साहित्य सम्बन्धी प्रस्थापनाओं तथा धार्मिक, नैतिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में प्लेटो के ही सिद्धान्त हैं, जो शेली की भावभूमि पर अपनी विराट छाया डाले हुए हैं। वास्तव में एक बड़ी सीमा तक शेली के पार्थिव जगत् से इतने अपार्थक्य और आकाशीय होने का कारण प्लेटो के भाव जगत् में उसका इतना अधिक विचरना ही है। 'ऐलास्टर' के कवि की सौन्दर्य्य-शोध के पीछे प्लेटो के सौन्दर्य्य की ही धारणा ही है। 'ऐपिप' के अपार्थिव प्रेम की अभिव्यंजना का आधार प्लेटो के प्रेम सम्बन्धी विचार ही हैं। 'प्रोमे' के काल्पनिक मानववाद का रहस्य प्लेटो के प्रेम के प्रभाव को ही दरशाता है। शेली पर यूनानी सभ्यता का इतना अधिक प्रभाव होने पर भी, वह इसके विनाश के कारणों—दासता का अस्तित्व, अप्रकृत व्यभिचार, नारी जाति का अपमान इत्यादि से भली भाँति अवगत था। जब वह 'हैलेनिक कलचर' की इतनी अधिक प्रशंसा करता था, तो वह इन तथ्यों को अपनी आँख से ओझल नहीं करता था। शेली ने प्लेटो के जिन विचारों को ग्रहण किया, उनमें से कुछ ये हैं—

आत्मा की अमरता—प्लेटो के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान स्मृति मात्र है। उसका कहना है कि स्वर्ग में आत्माएँ रहती हैं। पार्थिव बंधनों से मुक्ति पाकर आत्मा सौन्दर्य्य के संसार में विचरती है। शेली ने इस भाव को अनेक स्थलों पर अपने काव्य में प्रकट किया है। 'रिवोल्ट' में, 'मृतकों के देश' में, 'लाओ' और 'सिन्थिया' की आत्माएँ विचरती हैं। 'ऐडोनेस' में सभी, जीवित एवं मृत्त, कवियों का कीट्स के लिये शोक करना, इसी विश्वास का द्योतक है। वह मृत्यु को जगजीवन के सपने से जागरण मानता है।

"क्या तू सुनता नहीं है कि जो मर जाते हैं,
भावों के विश्व में नयन खोलते हैं?"

(रिवोल्ट)

अथवा 'ऐडोनेस' में,

"शान्ति! शान्ति! वह मृत्त नहीं, वह नहीं सो रहा, उसकी
अभी जिन्दगी के सपने से आँख खुली, जागा है!"

खगोलीय परिकल्पन—प्लेटो अपनी Timacus में कहता है कि सम्पूर्ण खगोल पूर्ण मेधा का ही विकसित रूप है। अपनी अपनी बुद्धि से भूमण्डल के सभी अङ्ग परिचालित होते हैं। सूर्य भी महान् शक्ति का दृश्य प्रतीक है। पृथ्वी भी दैविक है। शेली को प्लेटो के इस विचार ने बड़ी प्रेरणा दी है। वह 'प्रोमे' में इसकी विशद कल्पना करता है। पूरा काव्य ऐसे प्रतीकों से भरा पड़ा है, जो शेली की काव्य-शक्ति का प्रबल प्रमाण है, जिसका भली भाँति निर्वाह शेली के ही बस की बात थी। अपने 'अपोलो के गीत' में भी इसका दिग्दर्शन किया है।

दार्शनिक धारणाएँ—शेली के 'आदर्शवाद' के तत्वों का श्रोत शेली ही है। आदर्श प्रेम, आदर्श सौन्दर्य्य, आदर्श समाज व्यवस्था, जिनमें वह शीघ्र ही व्यष्टि से समष्टिगत होजाता है। उसका द्वंद्व-वाद भी, जिसका 'प्रोम' में अच्छा निरूपण हुआ है, प्लेटो पर ही आधारित है। 'प्रोमेथियस' मानव की आत्मा है, उसका मस्तिष्क सद् का प्रतीक है। जुपीटर में मानव के असद् का अंश है। उसकी पाप-मयी वासनाएँ उसमें केन्द्रित हैं। 'डिमोगोर्गन' के प्रेम से उसे मुक्ति मिलती है।

प्रेम—शेली की प्रेम की धारणा के पीछे तो प्लेटो का सिद्धान्त अत्यन्त स्पष्ट है। वह प्लेटो के समान प्रेम को आदर्श प्रेम मानता है और उसे समस्त विश्व के संचालन की मूल शक्ति एवं सर्वव्यापक मानता है।

इसी प्रकार शेली के सौंदर्य्य, सत्य, प्रकृति, भविष्य-वक्तृता इत्यादि पर प्लेटो की छाप स्पष्ट परिलक्षित है।

(६) शेली का मत—

प्लेटो और गौडविन को समझने के पश्चात् शेली के मत से अपरिचय नहीं रह जाता। उसके काव्य और जीवन दोनों ही में जो असंगतियाँ और परस्पर असम्बद्धता प्रकट होती है, उसका कारण यही शेली के मत के विरोधी तत्व हैं। एक ओर यथार्थवादी गौडविन, दूसरी ओर आदर्शवादी प्लेटो है। एक ओर तर्क है, दूसरी ओर कल्पना है। इसीलिए उसके काव्य में और जीवन

में धरती-आकाश की मिलावट है। जहाँ एक ओर वह तीखे वर्तमान का रूप प्रस्तुत करता है दूसरी ओर स्वर्गिक स्वर्णिम भविष्य की झाँकी दिखलाता है। जहाँ एक 'बादल' 'अबाबील' 'विच' का मानवेतर काव्य है, तो 'मास्क' जैसी कविताओं में यथार्थ स्वरों की व्यंजना है। एक ओर उसका आदर्श प्रेम सर्व व्यापक होकर आकाशीय हो गया है, तो दूसरी ओर उसके प्यार में तीखी कचोट और वेदना का गहरा स्पर्श है। उसकी यह दो दुनियाओं में रहने की प्रवृत्ति ही शैली का अपना स्वरूप है। यही शैली का 'शैलीत्व' है। एक ओर गौडविन उसे शोषण की शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है, तो दूसरी ओर प्लेटो जो उसके हृदय के साथ है उसे आकाश में उड़ाता है और उसके मानवेतर काव्य का मूल है। 'क्वीन मैब' 'पीटर बैल' 'हैलास', 'मास्क' आदि में उसके मत के गोडविन पक्ष हैं, तो, 'ऐलास्टर' 'ऐपिप' 'विच' इत्यादि उसके प्लेटोवादी पक्ष हैं। 'रिवोल्ट' और 'प्रोमे' में इन दोनों का मिला-जुला रूप मिलता है, जिसकी सर्वोत्कृष्ट कलात्मक व्यंजना 'ऐडोनेस' में व्यक्त हुई है, जहाँ धरती की वेदना कला के स्वर्गीय पर लगा कर आकाश में उड़ी है। यह प्रवृत्ति अन्त तक शैली के काव्य में रही। उसकी अन्तिम कविता 'जीवन की जय' जीवन का गान होते हुए भी उसे आकाशीय बनाना नहीं भूला।

(७) कविता के समर्थन में—

कविता के विषय में शैली की धारणा उसके कविता के समर्थन में ('इन डिफेंस आफ पोइज़ी') में भली भाँति व्यक्त हुई है। वह उसमें लोगों का ध्यान इस बात पर आकर्षित करता है कि प्राचीन काल में कवि गण ही समाज व्यवस्था के नियामक होते थे। कवि का भविष्य-वक्ता का रूप शैली के मस्तिष्क में प्रायः चक्कर काटा करता था। पाश्चात्य प्रभंजन के पद में—

> कर विकीर्ण मेरे मृत भावों को, अविरल भू-मण्डल पर,
> जैसे छितरे मृत पल्लव, नव जीवन पाने को भू पर।
> और इसी मेरी कविता के सम्मोहन द्वारा सत्वर,
> ज्यों अनुबुझ भट्ठी से गिरते भस्म अग्नि के कण उड़ कर।
> त्यों ही तुझसे बिखरे मेरे शब्द मनुजता के भीतर,
> मेरे अधरों के ही द्वारा तू इस सोती पृथ्वी पर।

इस भविष्य वाणी का बन जा अब तू शंखनाद भरपूर,
यदि आया है शरद् रह सकेगा वसंत फिर क्या अब दूर ?

('पाश्चात्य प्रभंजन' के प्रति)

वह कवि की उपमा वीणा से देता है—

मुझको बीन बनाले अपनी, ज्यों कानन है तेरी बीन !

पर वह कवि और वीणा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहता है कि वीणा वायु के साथ स्वर देती है, पर कवि के अन्दर ऐसी शक्ति है जो केवल गीत ही नहीं पैदा करती, बल्कि साम्यता भी लाती है वह कवि के लिए कहता है—

"वह वर्तमान में भविष्य देखता है और उसके विचार नवीनतम काल के फल और फूलों के बीज हैं।"

उसका विश्वास है कि भविष्य के सुखी चित्रों के झलकाने से ही संसार सुधरेगा। कवि का कर्म भविष्य-वाणी करना है। यह भविष्य-वाणियाँ स्वयमेव कवि के अन्तर से उद्भूत होती हैं, जब कवि कल्पना के तल में खोया रहता है। पर यहाँ भी प्लेटो की ही प्रतिध्वनि है, 'इयोन' में प्लेटो कहता है—

"क्योंकि कवि एक ज्योति है, समस्त और पवित्र वस्तु है, और जब तक वह प्रेरणा न पाये और चेतना से बाहर न हो जाये तब तक उसके अन्दर कोई नवोन्मेषण नहीं होता।"

यह नवोन्मेषण ही भविष्य-वाणी है, जिसे सम्पूर्ण कल्पनामयता की स्थिति में कवि श्रवण करता है। इसीलिये गोडविन के विपरीत तर्क के स्थान परकल्पना को प्रमुख क्रियात्मक शक्ति मानता है। तर्क तो कल्पना का ही परिणाम है वह कहता है—

"जैसे कार्यवाहक के लिये यंत्र, आत्मा के लिए शरीर, तत्व के लिये छाया है, ऐसे ही कल्पना के लिए तर्क है।"

कविता की उत्पत्ति तर्क से नहीं होती, वह तो कल्पना का गुण है। वह तो हृदय से उद्भूत होती है, न कि मस्तिष्क अथवा कठिन कर्म का परिणाम है। वह तो 'बाह्य सत्यों में व्यंजित जीवन का ही बिम्ब अथवा कल्पना की अभिव्यक्ति' है।

(८) प्रेम का पुजारी—

प्लेटो की प्रेम सम्बंधी धारणा के अनुसार नारी मात्र ही प्रेम का केन्द्र नहीं रहती, प्रकृति भी उसका एक अङ्ग बन जाती है। शेली के काव्य में प्रेम के इस स्वरूप की भलीभाँति अभिव्यक्ति की गई है। प्लेटो के समान शेली का भी प्रेम आदर्श और वायवी है। वह प्रेम को प्लेटो के समान संवेदना की घनी अनुभूति और मानवीय आत्मा में स्थित आदर्श सौन्दर्य्य के विपरीत को प्राप्त करने की अभिलाषा कहता है। यही 'उत्कट आकर्षण' है जो केवल नारी में ही नहीं प्रकृति में भी है। निर्झर क नाद में विहगों के कलरव में, मेघों की गर्जन में उसी की ध्वनि व्याप्त है। ग्रह गण, नक्षत्र सभी प्रेम की डोर से बँधे हुए हैं—

और एक ध्वनि, ऊपर चारों ओर,
एक ध्वनि, नीचे चारों ओर ऊपर,
घूम रही थी, यही प्यार की आत्मा थी,

(प्रोमि०)

एकाकी कुछ न जगत में,
सब वस्तु, नियम दैनिक से
घुल-घुल मिलतीं आपस में,
मैं क्यों न मिलूँ फिर तुम से ?

(प्रेम-दर्शन)

उसके एक बिखरे काव्यांश को देखिए—

"ओ, तू अमर्त्य देवता !
तेरा आसन है, मानव के भाव की गहराई में
मैं तेरी शक्ति और तेरा आराधन करता हूँ,
उस सबसे, मनुष्य जो हो सकता है, उस सबसे जो नहीं है
उस सबसे जो रहा है, और होगा।"

इसी आदर्श प्रेम के अभाव में—आज 'पावर्त्य-सरित' 'सुरधनु' नहीं बुनती 'अश्रुकणों की उपत्यका मूर्छित' हो गई है।

प्रेम की इसी आकाशीय धारणा का परिणाम यह है कि शेली प्रेम का महान् उपासक होते हुए भी, उसे मानव जीवन को परिवर्तित करने और सुखी बनाने का साधन मानते हुए भी, 'और है प्रेम जो समस्त कलह की चिकित्सा करता है' उसका प्रेम मानवीय नहीं रहता।

उसमें वास्तव का स्पर्श नहीं है। यदि वह मानवीय वासनाओं को गाता है तो ऐसे जैसे दूर आकाश से बोल रहा हो। इसी आदर्श प्रेम की व्यंजना उसके 'ऐपिप' में हुई है। विषय है नारी का प्रेम–जिसमें व्यक्तिगत अनुभूति है, पर वह शीघ्र ही व्यक्ति से समष्टिगत हो जाती है। इसी विषय को लेकर अपने नाटकों में ब्राउनिंग ने कैसा सुघड़ रूप दिया है, यही विषय बायरन की पाशव उद्दाम शक्ति का प्रेरक है। इसी को अपने माँसल सौंदर्य्य से कीट्स ने कैसा मोहक रूप दिया है। पर शेली में, प्रेम को सत्ता के स्थान पर प्रतिष्ठित करने-वाले शेली ने, उसकी अपार्थिव व्यंजना की है, देखिये—

वह जहाँ खड़ी है, देखो तो! एक मर्त्य आकृति सनी हुई,
प्रेम, जीवन, प्रकाश, देविकता से और गतिमयता से,
जो बदल सकता है, पर मिट नहीं सकता!
किसी उज्ज्वल चिरन्तनता का एक बिम्ब!
किसी स्वर्णिम स्वप्न की एक छाया, एक आभा
तजते हुए तीसरे मण्डल को पथ-प्रदर्शन विहीन, एक कोमल,
प्रतिबिम्ब प्रेम की शाश्वत शशि का,
जिसके आलोड़नों के नीचे, जीवन के उद्विग्न झोंके चलते हैं!
मधुमास, तारुण्य, और प्रभात का एक रूपक!
अप्रैल का एक मूर्तिमान दृश्य! चेताते हुए
अपनी मुस्कानों और आँसुओं से कुहासे के कंकाल को
उसकी ग्रीष्म समाधि में।

(ऐपिप)

उसका प्रभाव भावनामय वस्तु हो गया है। इसलिये वह आदर्श सौंदर्य का प्रेरक होते हुए भी महज तत्वहीन और प्रभावहीन है। अपार्थिव है। इसमें कीट्स की भाँति 'रक्त और माँस' नहीं है। वह पार्थिव स्वरूप को भी आकाशीय बना देता है—

कुमारी सोफिया स्टेसी को लिखी पंक्तियों का एक पद—

तेरे गम्भीर नयन, एक दुहरे उपग्रह के समान
घूरते हैं बुद्धतम को विच्छिप्तता में
अपनी कोमल, स्पष्ट ज्वाला के साथ पवन जो इस पर
पंखा झलते हैं, मृदु के उल्लास के वे विचार हैं,

जो जिफर्स के समान फकीर पर
तेरी उदार आत्मा को सिरहाना बनाती है।"

प्रोमेथियस में 'एशिया' कहे शब्द जैसे उसके लिए भी हों।

"तू बोलता है, पर तेरे शब्द हैं जैसे वायु; मैं उनका अनुभव नहीं करता!"

उसे इस आकाशीयता का स्वयं आभास है,

भीत तुम्हारे चुम्बन से मैं सौम्य सुन्दरी
पर न तुम्हें मेरे चुम्बन से करना है भय!

उसकी इस आकाशीय पुकार से भी पार्थिव दर्द छिपते नहीं छिपता—

नहीं दे सकता हूँ मैं तुम्हें मनुज, कहते हैं जिसको प्यार।
करोगी पर तुम क्या स्वीकार?

प्रो० क्रम्प के विचार इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं—

"उसने अपना सम्पूर्ण जीवन पूर्णता की खोज में व्यतीत किया, जिसे कभी स्वाधीनता कहा, कभी सौंदर्य, कभी प्रेम—शेली के तीनों परस्पर पर्यायवाची थे! पूर्ण स्वाधीनता बिना पूर्ण प्रेम के असंभव थी और पूर्ण सौंदर्य इन दोनों का परिणाम था। मनुष्य की स्वाधीनता की प्रेम द्वारा संचालित विश्व में ही प्राप्ति हो सकती है।"

पर शेली के प्रेम की प्लेटोवादी धारणा के बावजूद भी मानवीय प्रेम का उससे बढ़कर कोई कवि नहीं है। अपने अनेक प्रगीतों और लघु कविताओं में अपने मानवीय प्रेम को साधारण जीवन के दुःख-दर्द में लिपटे हुए प्रेम को, उसने अत्यन्त सरल और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त किया है। कहीं-कहीं उसके अन्तर का दर्द अपनी चरम सीमा पर है।

आह! रे दुर्भाग्य!
सपक्ष शब्द, जिन पर कि मेरी आत्मा,
प्रेम के विरल भूमंडल की ऊँचाई को भेदेगी,
मेरी जंजीरें हैं सीसे की जिसकी अग्नि के उड़ान के चतुर्दिक
मैं हाँफता हूँ, डूबता हूँ, काँपता हूँ, मिटता हूँ! (एपिप)

उसका निरंतर क्षीण होता स्वास्थ्य और 'कृश आकृति' जिसके कि प्रति वह सचेत है, उसके शब्दों में व्यंजित है—

आह ! नहीं आशा है, मेरे पास, स्वास्थ्य का शेष न कण,
नहीं शान्ति है मेरे मन में, मिली प्रशान्ति नहीं बाहर !

(नैपिल्स के निकट लिखित पद)

यही पीड़ा पाश्चात्य प्रभंजन के भैरव रव के साथ अपने स्वर मिलाती है !

आह ! उठाले मुझे लहर सा, पल्लवसा, बादल सा प्राण !
बिंधा पड़ा जीवन काँटो पर, तन है मेरा लहू-लुहान !

उसे अपनी कठिनाइयों का ज्ञान है, जिसकी अवशता उसकी वेदनाओं का मूल है ।

हाय ! समय के कठिन भार के नीचे मैं ओंधी नत शिर !

'दीप हुआ जब भग्न' शीर्षक गीत शेली के मानवीय प्रेम की ही सुन्दर अभिव्यंजना है, जिसके पीछे उसके स्वयं के अनुभव हैं, यहाँ वह आकाशीय प्रेम को स्वर नहीं दे रहा, उसकी स्वयं की वेदना कवि के अधरों पर बैठ गई है, जिससे ढल-ढलकर यह पंक्तियाँ निकल रही हैं—

आह ! प्रेम ! तू रोता है यदि
सकल वस्तुएँ यहाँ असार !
निज झूला, घर, अरथी को तू
चुनता क्यों नश्वरतम ! प्यार !

(९) प्रकृति का प्रेमी—

शेली के काव्य में प्रकृति का महत्वपूर्ण स्थान है । वह स्वयं प्राकृतिक सौन्दर्य्य का उत्कट उपासक था । अधिकांश समय प्रकृति के साहचर्य में ही कटता था । इसीलिए उसके काव्य में नदियों, सागरों झीलों के चलदृश्य, गहन वन प्रान्तर की स्तब्धता, तारों भरी रजनी की छायाएँ, शिशिर साँझ का श्वेत कुहासा, पर्वतों पर मेघों का आवारा-पन, कुहरिल पट को भेदती शारदीय धूप, फूलों के अनगिन वर्णों और सौरभों का सौन्दर्य, विहग बालों का कलरव, अलबम में सजे हुए चित्रों

की भाँति अंकित है। इटली के प्रवास में प्रकृति के दिव्य सौन्दर्य के पान का उसे अभूतपूर्व अवसर मिला। उसके प्रसिद्ध काव्यों की रचना या तो बसुधा के सौन्दर्य के अन्यतम स्थलों पर हुई है, या अपरिसीम नीलिम सागर के वक्षवर नौका विहार के समय। वह प्राय: मानव जीवन की कटु यथार्थता से मेल न खाकर खेतों-खलिहानों में जंगली खरगोशों की तरह छलाँग भरने का आदी था। ऐसे समय में, वह समाज के सभी कृत्रिम बंधनों को भूल जाता था। उसके भोजन में, रहन-सहन में, सभी में प्रकृति का सामीप्य था। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण संगी-साथी के समान था। उसने न तो प्रकृति को मानवीय अभिनय के लिए दृश्य पटल की भाँति समझा और न उसे मानवीय विचार अथवा आध्यात्मिक चिन्तना के लिए प्रक्षेप के रूप में देखा। उसके इस दृष्टिकोण में प्लेटो का प्रभाव स्पष्ट है। प्लेटो के अनुसार सौन्दर्य केवल नारी रूप में ही नहीं होता, वरन् प्रकृति का भी इस विस्तृत भूमण्डल की सौन्दर्य व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। शैली के काव्य में भी इस सत्य की उद्भावना है। प्रकृति उसकी काव्य की प्रेरक और जीवित संगिनी है।

शैली की तुलना अन्य कवियों के प्रकृति काव्य से करने से इस पक्ष पर अधिक प्रकाश पड़ता है। शैली के पूर्ववर्ती वर्ड्सवर्थ ने, जो 'प्रकृति के कवि' के रूप में ही विख्यात है, प्रकृति की उपासना एक दिव्य आध्यात्मिक भावों की स्रोतस्विनी के रूप में की है। प्रकृति के अन्दर वह आध्यात्मिकता के दर्शन करता है, जो उसके काव्य-दर्शन का आधार बनता है। वह मानवता के पुनरोज्जयन के लिये प्रकृति के सामीप्य को ही साधन मानता है। इसके विपरीत शैली के लिये प्रकृति प्रेम की प्रतीक है। वह प्रेमी की भाँति उसके सौन्दर्य का पान करता है, वह उसके साथ हँसता और रोता है, खेलता है और अपने को खोजता है। वह मानवता के पुनरोत्थान का साधन प्रकृति न मानकर प्रेम को मानता है, जो सब जगह व्यापक है। प्रकृति उसके लिये आध्यात्मिक अथवा नैतिक शक्ति की प्रदाता नहीं है। वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य में प्रकृति में आनंद के ही दर्शन किये हैं, जबकि शैली सभी भावों का, प्रमुख रूप से विषाद का अङ्कन करता है।

एक और अन्तर है, वर्ड्सवर्थ के काव्य में प्रकृति का स्वरूप बहुत कुछ केन्द्रित-सा हो गया है, उसमें अपरिचय की झलक नहीं

मिलती। उसका स्पन्दन स्थिति शील अथवा अत्यंन्त धीमा व सीमित है। शेली के समान उसमें प्रबल प्रभंजन का सा रव नहीं है। वर्ड्सवर्थ के प्रकृति काव्य में घरेलूपन-सा है, वह इसी जीवन और धरती की बात कहता है, आकाशीयता को भी भूमि के उपमान देकर भूमिका बना देता है। उसका अबाबील धरती से आकाश में उड़ कर पुनः अपने नीड़ में बसेरा लेने वाला अबाबील है। इसके विपरीत शेली भूमि की वस्तु को भी आकाशीय बना देता है। उसका अबाबील धरती से उड़ कर शीघ्र ही आकाशीय संगीत का प्रतीक मात्र, स्वर मात्र रह जाता है। वर्ड्सवर्थ के लिए प्रकृति चिरन्तनता का वसन है, तो शेली के यह है उसकी गति, वह अपने काव्य में चित्रमयता से अधिक गतिमय स्वरूप को ही देखता है। आरेथ्यूजा (प्रोमे० में) चट्टान से कूदती है, राका सुन्दरी पश्चिमी तरंगों पर द्रुत गति से विचरती हैं। वर्ड्सवर्थ के प्रकृति पट का घरेलू हो जाने का एक कारण यह है कि इसकी परिधि अत्यंत सीमित है। इसके विपरीत शेली के पर्यवेक्षण पटल का निरंतर विस्तार होता रहता है। आर्नो और यूजियन की पहाड़ियों से लेकर अटलांटिक की मेघ मालिकाओं और हिलोरों तक वह व्याप्त है।

शेली ने प्रकृति के अन्तःस्पन्दनों के साथ-साथ उसके बाह्य स्वरूप का भी बड़ी सफलता से---वर्ड्सवर्थ से कई गुनी अधिक सफलता के साथ-चित्रण किया है। वह प्रकृति के बिम्बों का जो उसके लचकीले कल्पना पट पर पड़े हैं, बड़ी खूबी से निरूपण करता है। वह महान् 'इम्प्रेसनिस्ट' है जो धूप-छाँह के सभी बिम्बों के तथा वस्तुओं के बदले संयोगों का सुन्दरता से अङ्कन करता है। नीचे देखिये—

"धूमिल और अंगयुत शशि नीचे लटकी,
दिया उँडेल प्रभा का सिन्धु, क्षितिज तट पर !
जिससे उमड़ चले पर्वत, पीला कुहरा,
भरा असीम फिज़ाँ में उसने जी भर कर।
पीत सुधा को पिया, न चमका धुक नखत,
नहीं एक स्वर सुना, प्रभंजन जो पहिले।
थे भय के निष्ठुर संगी, अब सुप्त हुये,
वहीं शैल पर, उसके दृढ़ आलिंगन में!"

(कवि का अवसान)

शैली के दूसरे पूर्ववर्ती, पर वर्ड्सवर्थ के समकालीन महाकवि कॉलरिज में शैली के प्रकृति काव्य की अनेक पूर्व कल्पनाएँ मिलती हैं। शैली की आकारीयता की कॉलरिज की 'मोन्ट ब्लान्क' में झलक देखिये—

उठो! पृथ्वी पर से अगुरुधूम के समान!

शैली के समान कॉलरिज में भी प्रकृति के गतिशील स्वरूप का—उसके अन्तःस्पन्दनों का अङ्कन है। वह अपनी 'डिजेक्शन ओड' में कहता है कि प्रकृति में सौन्दर्य उसके अन्तस्तल में है, बाह्य स्वरूप में नहीं। पर कॉलरिज में भी शैली के समान बाह्य चित्रण की बारीकी मिलती है।

कितनी गम्भीरता के साथ लटकता हुआ माधवीलता पुंज।
झूलता है, इसके वातायन से सम्पूर्ण पवन हैं शान्त!
कुटिया की चिमनी से उठा धुआँ जिसमें प्रकाश का स्पर्श है!
स्तम्भों में उठता है!

शैली की 'पीसा की साँझ' शीर्षक कविता देखिये—

दिवसावसान है, विहग शयन को होते आतुर,
श्वेत पवन में द्रुत गति से चमगीदड़ पाँखें होती हैं लय,
सरक रहे गीले कोनों से बाहर मन्द नरम से दादुर,
और साँझ की साँस विचरती इधर-उधर फिरती है निर्भय।

शैली के समान कॉलरिज के काव्य में भी धाराधार वारिश और हिमानी पर्वतों के दृश्य मिलते हैं! नीचे की पंक्तियों में शैली के काव्य की सी ध्वनि है—

प्रभु! जलधारों को राष्ट्र के घोषों के समान देने दो उत्तर,
प्रभु शब्द की ही हो प्रतिध्वनि हिमानी पर्वतों में।
चरही के निर्झरो! गाओ प्रभु को ही अपने हर्ष प्रदायक स्वर में,
देवदारुओ! तुम भी, अपनी, कोमल, आत्मावृत फिज़ाओं में।

प्लेटो के प्रभाव से मुक्त भौतिकवादी कीट्स के लिए, शैली के विपरीत, प्रकृति अधिक यथार्थ थी। कीट्स इसके सौन्दर्य का मुक्त रूप से पर्यवेक्षण करता है। वह न इसमें आध्यात्मिक रूप देखता है, न बौद्धिक, अपितु अपनी इन्द्रियों द्वारा उसकी सुषमाओं का पान

करता है। प्रकृति उसके लिए एक विराट् काव्य-पुस्तक के समान है। उसके लिए कला और प्रकृति एक सा आनन्द देती है। प्राकृतिक आनन्द ही कलाकार के मस्तिष्क में समाकर कला का रूप लेता है। शेली की भाँति प्रकृति उसके लिए जीवित या प्रतीक नहीं है, और न कीट्स शेली की भाँति अपने प्राकृतिक चित्रण में, अस्पष्ट, आकाशीय और दैविक है, इसके विपरीत, कीट्स के अंकन में एक वास्तवता शान्ति और घरेलूपन है। शेली के अंकन में प्रायः बादल, तूफान, आकाश, पर्वत, सागर का वर्णन पाते हैं, कीट्स के काव्य में वर्ण, वन, खेत, फूल का शान्त सौंदर्य मिलता है।

"जब प्रकृति को वर्ड्सवर्थ आध्यात्मिकता प्रदान करता है, और शेली बौद्धिकता तो कीट्स अपनी इन्द्रियों द्वारा उसकी व्यंजना करता है। वर्णविजियाँ, गंध, स्पर्श, स्पंदित संगीत ये सब वस्तुएँ हैं जो उसे गम्भीरता से आन्दोलित करती हैं।" (ब्रैडले)

शेली के समान बायरन में भी प्रकृति के उन्मत्त स्वरूप में रुचि थी। पर उससे वह कोई दार्शनिक उद्भावना नहीं करता था। बायरन के लिए प्रकृति मानवीय प्रवृत्तियों के अभिनय के लिए शानदार पृष्ठ-भूमि के समान है। वह प्रकृति से आनन्द पाने के बजाय उत्तेजना पाता है।

शेली के समान प्रकृति के जीवंत रूप को निरखने की भावना हमें हिन्दी छायावादी कवियों में भी मिलती है। श्रीमती महादेवी वर्मा की इन पंक्तियों को देखिये—

सिन्धु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित तम का विकल मन है।
भीति क्या, नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल!

अथवा,

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,
आ, वसंत रजनी,

जो सहज ही शेली की—

त्वरितमयी पश्चिमी लहर पर,
हे, राका, तू विचरण कर!

पंक्तियों का स्मरण दिलाती हैं।

शेली का 'पाश्चात्य प्रभंजन' कवि के मृत भावों को मनुजता में बिखराकर भविष्यवक्ता हो जाता है। 'निराला' का 'बादल' विप्लव की मूर्त्ति बनकर सोध शृङ्गों को भूमिसात् करता हुआ त्रसित कृषक के लिये आनन्द की वर्षा करता है।

रुद्ध कोष, है, क्षुब्ध तोष
अंगना-अङ्ग से भी लिपटे।
आतंक-अङ्क पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से बादल !

यही बादल, शेली के 'बादल' के समान लुक-छिपकर आकाश में खेल खेलता है ! कभी 'किरण-कर पकड़-पकड़कर' 'मुक्तगगन' पर चढ़ता है। कभी सृष्टि के अंतहीन अम्बर से, घर से क्रीड़ारत बालक के समान उमड़ पड़ता है।

यमुना की आकुल लहरें नटनागर की गौरव गाथा कहती हैं। प्रिया की स्मृति 'लघु लहरों की-सी चपल-चाल' चलती है।

श्री सुमित्रा नंदन पंत* के 'बादल' में, यद्यपि शेली के 'क्लाउड' का परोक्ष प्रभाव दिखाई देता है, पर तो भी अत्यंत मौलिक है। उसमें 'क्लाउड' के समान अन्तर्मन का गहराई से पूर्ण चित्रों में रम्यांकन नहीं है, पर पंत जी ने छोटी-छोटी रेखाओं से, 'धूम धुँआरे, बादर कारे' का जो बाह्यांकन किया है, वह बड़ा सजीव और अनूठा है। पंत जी की संगीतात्मकता और चित्रण-कुशलता अनेक स्थलों पर अपनी चरम सीमा पर है—

* किन्तु पन्त जी के काव्य में प्रकृति के इस रूप की अपेक्षा उसके मांसल सौन्दर्य का अंकन अधिक है अथवा बायरन के समान उसे मानवीय अभिनय की यवनिका बनाकर उसका चित्रण किया है, कहीं-कहीं वर्ड्सवर्थ के समान प्रकृति के अन्दर आध्यात्मिक रूप को भी देखा है—

उठाकर लहरों से कर कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन ?

वास्तव में, पंत जी के अन्दर रोमानी काव्य की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं, पर प्रमुख रूप से कीट्स का ही प्रभाव है।

लघु लहरों के चल पलनों में
हमें झुलाता जब सागर !
वही चील सा झपट बाँह गह
हम को ले जाता ऊपर !

× × ×

कभी चौकड़ी भरते मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते ।
मत्त-मतङ्गज कभी झूमते,
सजग-शशक नभ में चरते ।

पर शेली का प्राकृतिक चित्रण जहाँ सब से अधिक गहरा है, वहाँ उसका प्रसार भी अति व्यापक है। उसकी दृष्टि समुद्र तल के नीचे उगनेवाली वनास्पतियों पर भी जाती है।

किन्तु दूर नीचे खिलते, सामुद्रिक पुष्प, व स्पंदित वन,
वारिध-तल के नीरस कोंपल दल का पहिने हुए वसन !
तेरा रव सुन, सहसा होते, भय से पीले कम्पित म्लान,
आतंकित हो लुंठित होते, स्वयं सभी, सुन, हे पवमान !

('पाश्चात्य प्रभंजन')

शेली के प्राकृतिक चित्रण में वर्णों के प्रति उसकी रुचि देखिये।

कपिल श्याम और पीले, ज्वर से रक्तिम वर्ण, पर्ण म्रियमाण !

अथवा

नीलिम द्वीप, और शोभित है पारदर्शिनी शक्ति प्रबल,
नील लोहिता दोपहरी की, हिम आच्छादित शैलों पर,

(नैपल्स के निकट)

शेली को विज्ञान से भी अधिक रुचि थी, इसका प्रभाव उसके प्रकृति चित्रण पर भी मिलता है। 'बादल' की निम्नलिखित पंक्तियाँ उसके वैज्ञानिक ज्ञान की परिचायक हैं—

मैं हूँ दुहिता प्रिय कोमल, हैं माँ-बाप मृत्तिका, जल,
पोषक है यह नीलाम्बर ।

× × × ×

छिद्रों से सागर तट के—जाता हूँ मैं बेखटके,
मैं परिवर्तनशील, किन्तु हूँ अविनश्वर !

× × × ×

और पवन रवि की किरनों के —उन्नत उदर कणों से अपने,
निर्मित करते हैं समीर का नील शिखर !

(बादल)

काव्य में वैज्ञानिकता का स्वरूप हमें लॉर्ड टेनीसन के काव्य में भी मिलता है।

अस्तु, हम देखते हैं कि शेली का प्रकृति चित्रण आन्तरिक और बाह्य दोनों रूपों में अन्य कवियों से विशिष्ट है, अधिक गम्भीर और व्यापक है। प्रकृति उसके लिये जीवित मनुष्य की भाँति बौद्धिकता का श्रोत है, प्रेम की प्रतीक है, सौन्दर्य्य का आगार है।

(१०) शेली की शैली—

रचनाओं की दृष्टि से शेली की शैली का अध्ययन निम्नलिखित चार भागों में बाँटकर, कर सकते हैं—

(१) बृहद् काव्य
(२) प्रगीत काव्य
(३) नाटक
(४) व्यंग काव्य

(१) **बृहद्काव्य** में 'क्वीन मैब', 'ऐलास्टर', 'विच' 'रिवोल्ट' इत्यादि आते हैं। इनमें काव्य की दृष्टि से अनेक स्थल बहुमूल्य हैं, पर कथानक की दुर्बलता और कहानी कह सकने की क्षमता के अभाव के कारण इनका स्थान शेली के काव्य में, काव्य की दृष्टि से द्वितीय है।

(२) **प्रगीत काव्य**—प्रगीत अथवा लघु कविताओं में ही शेली के कवि की सर्वोच्च प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इनमें निजी वेदना, अनुभव, और मानवीय संवेदन भावों की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। 'पाश्चात्य प्रभजंन', 'बादल', 'अबाबील', 'नैपल्स के निकट लिखित पद', इत्यादि प्रगीत अङ्गरेजी साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इसका आगे हम पृथक् विस्तृत विवेचन करेंगे।

(३) **नाटक**—शेली का युग वास्तव में नाटकों के अनुकूल न था। इसलिये इस युग में नाटकों की संख्या नगण्य है। शेली ने प्रमुख

रूप से 'हैलास' 'प्रोमे', 'चिन्ची' नामक नाटक लिखे हैं। इनमें नाटक की दृष्टि से अंतिम ही नाटक सफल और उच्चकोटि का कहा जा सकता है। इसका प्रदर्शन भी हो चुका है। शेष नाट्य साहित्य में प्रगीतों का ही प्राचुर्य्य है।

(४) व्यंग—व्यंगकार के रूप में समग्र दृष्टि से शेली को इतना उच्च स्थान प्राप्त नहीं है। पर तो भी अनेक स्थानों पर उसकी उच्च व्यंग की प्रतिभा की अनुपम झलक मिलती है। उसके प्रमुख व्यंग काव्य हैं, 'यूडीपस' 'पीटर बैल' और 'मास्क'। इन सभी में उसने कस-कस कर शासकों और पादरियों की खबर ली है। पहला, वास्तविकता से दूर जा पड़ने के कारण इतना सशक्त नहीं है। दूसरे में, उसकी उच्च व्यंगकार की प्रतिभा के स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं। 'नरक' शीर्षक से लंदन नगर पर कसा गया व्यंग बड़ा चुभता है। वह नरक से लंदन नगर की उपमा देता हुआ, शासकों, धर्मध्वजों, लार्डों, फैशनेबुल नारियों तथा प्रतिक्रियावादियों पर तीव्र व्यगों की वर्षा करता है। 'मास्क' में व्यंग के साथ-साथ उसकी कलात्मकता भी मिल गई है। कवि 'आडम्बर' 'कत्ल' 'प्रवंचना' इत्यादि का वर्णन करता है, पर इनके पीछे नाम ले-लेकर तत्कालीन शासकों को अपना शिकार बनाता है।

इसके अतिरिक्त शेली ने गद्य भी लिखा था। जिसमें अनेक राजनीतिक पर्चे, और मित्रों तथा सम्बंधियों को लिखे गये पत्र एवं डायरी और अनेक निबंध हैं जिनमें 'कविता के समर्थन में', प्रेम, साहित्य, धर्म, कला सौंदर्य्य के विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। अधिकांश इनमें अधूरे रह गये हैं। इनमें शेली ने विषय का बड़ी गम्भीरता और तर्क संगत भाषा में प्रतिपादन किया है। अनेक स्थलों पर गद्य की भाषा इतनी निखरी हुई है कि अङ्गरेजी साहित्य में बेजोड़ है।

शेली ने अपनी कविता प्रत्येक छंद में की है, छंदों के अनेक प्रयोगों के साथ-साथ, उसने अनेक कठिन छंदों को सुघड़ता से प्रयोग कर पुनर्जीवन दिया है। 'टरजारीमा' छंद का प्रयोग जो उसकी 'जीवन की जय' शीर्षक अधूरी कविता में मिलता है, शेली की छंद-कुशलता का प्रमाण है। छंदों का अनुक्रम बिलकुल स्वाभाविक है।

कविता की भाषा के सम्बंध में शैली की दृढ़ धारणा थी कि इसमें कृत्रिमता तनिक भी न होनी चाहिये। भावों की अनुरूपिणी भाषा अपने सहज स्वाभाविक सौन्दर्य्य के साथ हर जगह बोधगम्य है।

(११) शैली की प्रगीतज्ञता—

जैसे कीट्स का नाम प्रशस्तियों के लिए प्रसिद्ध है, वैसे ही शैली का प्रगीतों के लिए। शैली की प्रतिभा का सबसे अधिक निखार उसके प्रगीत काव्य में ही है। प्रगीत काव्य का वह अङ्गरेजी का ही क्या विश्व साहित्य का अनुपम कवि है। वास्तव में, ड्रिंक वाटर के शब्दों में उसका सम्पूर्ण काव्य ही प्रगीत है। चाहे 'बादल' या 'अबाबील' जैसी लघु कविताएँ हों अथवा 'प्रोमे' जैसे बड़े काव्य हों, सभी में उसने उच्च कोटि का प्रगीत तत्व भर दिया है। अर्नेस्ट रिस के अनुसार 'वह गीत-प्रदेश का द्वार-रक्षक है।' उसकी गीतात्मकता के लिए हम उसी के शब्द जो उसने दान्ते के काव्य के लिए प्रयुक्त किये थे, प्रकट कर सकते हैं—

"उसके समूचे शब्द ही आत्मा से ज्योतित हैं, प्रत्येक एक चिनगारी के समान है, अनलुस विचार के चिर प्रज्वलित कण के सदृश।"

उनकी व्यंजना अत्यन्त स्वाभाविकता से होती है, जो गीतात्मकता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। 'जैसे प्रसूनों से सुरभि और नासिका से श्वासोच्छ्वास' वैसे ही शैली के अन्तर से गीतों की स्रोतस्विनी फूटती है। दृश्य जगत का सौंदर्य्य उसके कल्पना दर्पण से टकराकर शतवर्णी इन्द्रधनुप के समान बिखर उठता है। संगीत स्वयमेव उसके साथ चला आता है। और जब तक वह गाते गाते अबाबील की भाँति, मनुष्य मात्र से एक स्वर, एक गीतमयता की प्रतीति नहीं हो जाता गायक का व्यक्तित्व उसके गीतों में निरन्तर पिघलता रहता है। गीतों को वह किसी नियम-प्रणाली के सहारे नहीं उतारता, वे अवश रूप से उसके अधरों पर आ बैठते हैं। स्वाभाविक संगीतात्मकता को जहाँ-तहाँ हल्के स्पर्श से हेर-फेर करना शैली की अपनी विशेषता है। शैली के अन्दर उच्च कोटि के प्रगीतकार के सभी गुण वर्तमान थे। न्यूटन के अनुसार प्रगीतज्ञ के अन्दर भाव प्रवणता,

और कल्पना शक्ति का अतिरेक होना आवश्यक है, क्योंकि प्रगीत काव्य व्यक्तिगत भावना या अनुभूति की व्यंजना ही है। इसके अतिरिक्त प्रगीत काव्य के अन्य आवश्यक गुण संगीत, सरलता, प्रवाह-हार्दिकता (आकस्मिकता), विचारों की क्रमबद्ध निःसृति और बिम्ब की ग्रहणशीलता इत्यादि है। शेली के अन्दर इन सभी गुणों का प्रबल प्राचुर्य था। उसका अधिकांश काव्य ही व्यक्तिगत है। 'भारतीय पवन' '१८१४ के पद' 'नैपल्स के निकट...' इत्यादि में उसके निजी दर्द की अभिव्यक्ति है। 'अबाबील' और 'बादल' जैसे निर्व्यक्तिक काव्य में भी शेली का ही रूपान्तर है। 'पाश्चात्य प्रभंजन' में इन दोनों अनुभूतियों का समन्वय है। भावुकता और काल्पनिक शक्ति अपरिसीम है। वह तनिक सी अन्याय की बात से भड़क उठता है। उसकी लचीली कल्पना भावनात्मक वस्तुओं को भी मूर्तिमयी कर देती है[1]। सरलता के साथ उच्च कोटि की स्वाभाविक संगीतात्मकता में सनी हुई कविता में अदम्य प्रवाह है। संगीत की दृष्टि से वह रोमानी युग का सर्वोत्कृष्ट गायक है। स्विनबर्न की 'ट्रिक्स' (चाल) और टैनीसन की कृत्रिमता के विपरीत, उसका, काव्य-संगीत अत्यन्त प्रकृत है। उसके अन्दर हार्दिकता का गुण अन्य कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक है। उसकी हार्दिकता का नीचे-से-नीचा तल भी दूसरे हार्दिक कवि, बायरन के ऊँचे-से-ऊँचे तले से उत्कृष्ट है।

उसके प्रगीतों की तुलना प्रायः ब्लेक से की जाती है। पर, ब्लेक के विपरीत उसके सर्वोत्कृष्ट गीत प्रारम्भिक नहीं हैं उसके समान शेली सुख और भोलेपन के गीत नहीं गाता, और न उसकी सी उसके अन्दर मानवीय लय ही है। उसके गीतों की एक विशेषता यह है कि जहाँ ब्लेक के गीतों की लय शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, वहाँ शेली के गीत निरंतर उत्कृष्टतर होते चलते हैं। शेली के गीत ब्लेक की अपेक्षा अधिक मर्मभेदी हैं। उनकी प्रेरणा सुख से नहीं दुख से है।

'मधुतम गीत वह निज करते, अति दुख भावों का व्यंजन'

(अबाबील)

---

[1] एक उदाहरण—

जीवन, बहुवर्णी शीशे के गुम्बज सा, कर देता,

कलुषित धवल कान्ति को चिरता की, जब तक न पगों से

थम कर देता चूर चूर। (एडोनेस)

सचमुच उसके गीतों में मधु का प्रवाह तभी उमड़ता है, जब वह बुलबुल के समान, काँटे से अपनी छाती बिंधा लेता है। और दुख, प्रेरणा का स्रोत बनता है। जब यथार्थ की शिला पर उसका प्लेटोमय स्वप्न भंग हो जाता है, तो अतीव वेदना की चीख उसका प्रगीत बनकर घुमड़ उमड़ उठती है।

आह ! उठाले मुझे घास से,
प्रिय, निष्प्रभ, मूर्छित होता मैं !

(भारतीय पवन के प्रति)

ब्लेक और शेली के प्रगीत काव्य के अन्तर को स्पष्ट करते हुए आर्थर साइमन ने लिखा है—

"शेली अपने सारे जीवन भर स्वप्न द्रष्टा ही बना रहा, वस्तु द्रष्टा नहीं, हम उसकी 'एशिया' के समान पर्वत शृंग पर ही उसका ध्यान करते हैं, कहते हुए,

मेरा मस्तिष्क,
बोझिल होता है, क्या तू कुहरे में आकृतियाँ देखता है ?

शेली को कुहरा उसके दर्शन वस्तु का भाग था। उसने कभी जीवन या कला में सिवाय कुहरे के द्वारा कुछ नहीं देखा। इसके विपरीत ब्लेक निरन्तर दृष्ट की ही स्थिति में रहा, जबकि शैली अदृष्ट की। जो ब्लेक ने देखा, शेली देखना चाहता था। ब्लेक कभी नहीं सपनाया, पर शेली कभी नहीं जगा, उस स्वप्न से, जो उसका जीवन था।

उपरियुक्त अवतरणों में यद्यपि शेली के उस पक्ष को नितांत अनदेखा किया गया है, जो प्लेटो की प्रभाव परिध से बाहर था, पर तो भी इससे दोनों कवियों के मौलिक अन्तर पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

शेली की गीतात्मकता अतुलनीय है। इसके समान पूर्ण दक्षता के दर्शन कहीं नहीं होते, और न इतनी ऊँचाई से गिरती सघन ध्वनि अन्यत्र कहीं पाते हैं। सचमुच कवि की वाणी कभी इतनी निर्बोध होकर गीतों में नहीं उमड़ी। हर स्थान पर शेली का संगीत स्वत: नि:सृत होता रहता है। क्योंकि उसकी अनुभूति की शक्तियाँ तीव्रता के साथ लय मय हो गई हैं।

शेली की कवि वाणी आवेश की स्थिति में जल के सोते के समान फूटती है। जब पावन लय का उन्माद उस पर छा जाता था, और दृश्य परिधि में प्रेम, प्रकाश और जीवन के रूप जीवित हो उठते थे। तब कल्पना की शाखों से सूखे पत्तों के समान झरते हुए ज्वलित विचारों को वह अपने स्वरों से बटोरने लगता था और लय में बाँध कर गीतों में बिखराता था। वह निरंतर उच्चतर प्रयत्न, उद्दीप्त सघनता, आत्मिक प्रस्फुटन और प्रेरणा की पवित्रता धरती के अनूठे बिम्बों के साथ समन्वित कर अपनी कविता में निजी वेदना के रस में भिगो कर सुनाता रहता था। पर सदा ही इस अपरिसीम पवित्र और गौरवशाली चिन्तना के कणों को वह पकड़ पाने में सफल न होता था। अनेक स्थानों पर उसके न कह सकने की वेदना उसकी अप्राप्य की प्यास के साथ मिलकर घुमड़ती सी जान पड़ती है। नीचे के पद्यांशों को देखिये—

दुखी होना, पर कोई तृप्ति न पाना—दुखी होना, पर भटकना
लघु उन्मन पगों से—रुकना, सोचना, और अनुभव करना
लहू को शिराओं में प्रवाहित होते और आवेशित देखकर
जहाँ व्यस्त विचार और अन्य स्पन्दन मिलते हैं।
अननुभूत स्नेहित परस के बिम्ब को पोसना
जब तक कि धूमिल कल्पना नहीं प्राप्त कर लेती
अर्द्ध सृजित छायाएँ ....

(एक अधूरा काव्यांश)

ऐसे और भी अनेक स्थल हैं, जहाँ वह अपनी चिर दुष्कल्पना में बसे सौन्दर्य्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत नहीं कर पाया।

इस आवेशमयता तथा कल्पना शक्ति की प्रखरता से जिसे वह काव्य का प्राण मानता है, और जिसका 'अपनी कविता के समर्थन में इतना प्रतिपादन करता है, उसका काव्य सदोष रह गया है। उसमें शीघ्रता है, अपूर्णता और असामंजस्यता है, वस्तुगत सत्यों को ग्रहण करने की अक्षमता है, क्रियाओं के प्रयोग की लापरवाही है। पर इन सब दोषों का, जिन्हें कि अपनी तनिक सी प्रयत्नशीलता से 'सैन्सी' और 'एडोनेस' के स्तर तक पहुँचा सकता था, और जिनका कि अन्य समकालीन कवियों में सर्वथा अभाव है, मूल कारण यही अधैर्य की स्थिति है। साइमौण्ड के शब्दों में—

"न केवल अभी कवि ही तरुण था, वरन् उसके तरुण मस्तिष्क के फल को अनुभव की धूप में अच्छी तरह पकने से पूर्व ही तोड़ लिया गया था।"

उसने कलात्मकता की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि कविता को वह मस्तिष्क से असम्बद्ध मानता था, इसी को लक्ष्य कर कीट्स ने उसे लिखा था।

"Curb your magnimity and load every rift with ore."

बारीकी में उसे कम ही रुचि थी, कम से कम उस बारीकी में, जो उसकी दृश्य परिधि में स्वयं ही नहीं आजाती थी। इसीलिये उसमें 'गेटे' की सी सुघड़ाई नहीं मिलती।

उसे अपने प्रति कहीं-न-कहीं अनास्था अवश्य थी, जो उसकी उन परिस्थितियों का परिणाम थी, जिनके भीतर उसे सृजन करना पड़ता था। इसलिये वह आवेश के दौर के बीत जाने पर रचना के प्रति विमुख हो जाता था और उसे अधूरा छोड़ कर नये सृजन में जुट जाता था, यही कारण है कि वह अपनी बड़ी रचनाओं में छोटी रचनाओं की भाँति अन्तिम पूर्णता नहीं दे पाया।

पर यही आवेश का आधिक्य, जिसने उसके काव्य को इतना असंयत और वेगमय बना दिया है, उसके अन्दर चमत्कार और प्रखरता और मधुर तरलता भरता है। यही आवेश जो उसकी कविता को दोषयुक्त करता है, उसके काव्य की शक्ति है। जो बात बर्न्स के गीतों के लिये सत्य है, वही शेली के प्रगीतों के लिये, उसके समस्त काव्य के लिये, उसके सम्पूर्ण जीवन के लिये, सही है।

वही शक्ति जो उसे भटकाती है, उसके गीतों को जीवित रक्खेगी।

संक्षेप में, शेली का काव्य अत्यंत स्वाभाविक, संगीतमय, मर्मस्पर्शी और नूतन चेतना का वाहक है, उसका प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रवाह गहराई से विश्व साहित्य पर पड़ा है और पड़ रहा है, जब तक काव्य से तारुण्य उद्दीप्त रहेगा, और तारुण्य से काव्य को स्फूर्ति मिलेगी, शेली का नाम अमिट कीर्ति के पटल पर चिर युगों तक दैदीप्यमान रहेगा।

शेली का काव्य-लोक

महाप्राण ! यह सीमाहीन भाव का अर्णव,
निज कल्पनातीत गुम्फों में तुझे पालता ।
जिनमें तू एकाकी स्थित, ज्यों मम मानस में,
स्वर देता इसकी रहस्यमय हिल्लोलों को !

(काव्यांश १८२२)

Liberty

(1)

The fiery mountains answer each other,
Their thunderings are echoed from zone to zone
The tempestuous oceans awake one another,
And the ice-rocks are shaken round Winter's throne,
When the clarion of the Typhoon is blown.

(2)

From a single cloud the lightning flashes,
Whilst a thousand isles are illumined around;
Earthquack is trampling one city to ashes,
An hundred are shuddering and tottering-the Sound
is bellowing underground.

(3)

But keener thy gaze than the lightnings glare,
And Swifter thy step than the earthquack's tramp;
Thou deafenest the rage of the ocean, thy stare
Makes blind the volcanoes; the suns's light lamp
To thine is a feu-fire damp.

(4)

From billow and mountain and exhaltation
The sunlight-is darted through vapour and blast,
From Spirit to spirit, from Nation to nation,
From city to hamlet, thy dawning is cast,
And tyrants and slaves are like shadows of night
In the van of the morning light.

(1820)

स्वाधीनता

(१)

अग्नि-शैलमालिका परस्पर देतीं उत्तर,
प्रान्त-प्रान्त प्रतिध्वनित कड़क घोषों से जिनके।
होते जागृत झंझालोड़ित सिन्धु परस्पर,
हिम के खण्ड चतुर्दिक ढहते शिशिरालन के,
उठते दीर्घ घोष जब विप्लव की दुंदुभि से!

(२)

शिखा तड़ित की चमक झमकती एक मेघ से,
किन्तु सहस्र द्वीपखंडों को द्युतिमय करती।
भस्मसात है एक नगर ही भूमिकम्प से,
किन्तु एक क्षत में भयार्त्त वह कम्पन भरती—
घोर गर्जना भू-अन्तर में त्रस्त विहरती।

(३)

किन्तु तड़ित से तेरे दृग की शिखा प्रखर है,
भूमिकम्प के डग से तेरे पग हैं द्रुततर।
सिन्धु-रोष को बधिर, अंध ज्वालामुखियों को—
करती सत्वर; और अंशु की ज्योति प्रखरतर—
लगती धुंधियाती सीली तेरे समक्ष पर!

(४)

दिनकर-आतप, लहर और पर्वत-पठार से,
झंझा, वाष्प-पटल से ही छनकर आता है।
प्राण-प्राण से, राष्ट्र-राष्ट्र से और नगर से—
कुटिया तक, तेरा प्रभात ही मुस्काता है।
और निरंकुश, दास, रजनि की छायाएँ अब,
तेरे भोर उजाले के रथ के पीछे सब।

(१९२०)

गीत

(१)

दीप हुआ जब भग्न, धूल में,
मृतक ज्योति हो गयी विलीन !
बिखर गयी जब बदली होती,
इन्द्रधनुष की प्रभा मलीन।
याद नहीं मृदु ध्वनियाँ रहतीं,
टूटे जबकि बीन के तार,
अधर हुए मुखरित यदि रहता
जीवित नहीं परस्पर प्यार !

(२)

दीप बीन जब नष्ट होगये,
शेष न प्रभा और संगीत।
प्राण मूक, तो उर की गूँजें,
नहीं सुनातीं कोई गीत।
गीत न, शोक रागिनी करती,
टूटे मठ से शोर पवन।
अथवा करुण हिलोर उठातीं,
मृत नाविक-घंटी से स्वन।

(३)

एक बार दिल मिले, छोड़ता,
प्रथम बार ही प्रेम सुवास।
दुर्बल हृदय विलग हो करता
गत पाने के लिये प्रयास।
आह ! प्रेम तू रोता है यदि,
सकल वस्तुएँ यहाँ असार।
निज झूला, घर, अरथी को तू,
चुनता क्यों नश्वरतम, प्यार !

(४)

झंझा सम लिप्साएँ इसकी,
कर देंगी कागों-से खंड।
उज्ज्वल तर्क तुझे भेदेगा,
शिशिर-निलय में ज्यों मार्तण्ड।
तेरे गरुड़नीड़ सम घर का,
सड़ जायेगा हर शहतीर।
नग्न लजेगा, हँसने को, जब,
झरें पर्ण औ' शीत समीर।

(१८२२)

—:०:—

'पीसा' की साँझ

दिवसावसान है; विहग शयन को होते आतुर,
श्वेत पवन में, द्रुत गति से चमगीदड़ पाँतें होतीं हैं लय।
सरक रहे गीले कोनों से, बाहर मन्द तरल में दादुर,
और साँझ की भाँग विचरती, इधर उधर फिरती है निर्भय,
घूम रही है निर्झर के चंचल-जल-तल पर मंथर गति से!
पर न जगातीं एक ऊर्मि को भी निज ग्रीष्म-स्वप्न की रति से।

(२)

आज न हरियाले तृणदल पर एक तुहिन-कन,
बची नहीं भीतर तरुओं की कहीं छाँह में।
हल्का, शुष्क, और यह स्पन्दनहीन प्रभंजन,
बिखराता फिरता भर कर अपने प्रवाह में।
रज के कण, सूखे तिनके, वह मंद समीरण,
भँवराता नगरी के पथ पर करता विचरण।

(३)

तीव्र प्रवाहित सरिता की उस नीर-सतह पर,
सोया पड़ा हुआ है बिम्ब नगर का लहरिल।
है अशान्त यह, बँधा हुआ है एक जगह पर,
चिरकम्पित है, पर है अक्षय, आभा झिलमिल।
देखो जाकर वहाँ ....
तुम होकर परिवर्तित ऐसा ही पाओगे!

(४)

बन्द हुआ वह गर्त, मग्न है जिसमें दिनकर,
अहिमल-घन की घनतम प्राचीरों से आवृत्त।
ठँसा पड़ा हो ज्यों पर्वत पर्वत के ऊपर,
पर उगता, बढ़ता, संकुल की ओर प्रवर्तित।
और नीर-सी-नीली जगह हुई है उस पर,
शुभ्र साँझ-तारिका चमकती जिसमें होकर!

(१८२१)

गायन

तड़प रहा हूँ, जो दैविक है, उस गायन को,
मेरा हृदय प्यास में अपनी, कुसुम मरणमय !
परलो ! मंत्रों से अभिसिंचित मधु-सी ध्वनि को,
तुम चाँदी के निर्झर-सी अब शिथिल करो लय !
मैं हूँ ज्यों तृणहीन भूमि है, मृदु जल कन से,
प्रिय, अचेत, जब तक न जागरन उनका फिर से !

उस मृदु ध्वनि की आत्मा को दो मुझको पीने !
और ! और !! पर हाय तृषाकुल, कितना व्याकुल !
खोल रही है व्याल, जिसे जकड़ा चिन्ता ने,
मेरे उर पर, घुटते प्राण विकल जो पल-पल !
विचर रही संगीत लहर है अब घुल धुल कर !
शिरा शिरा से, बह-बह कर, मम उर मानस पर !

जैसे एक बनफ़शा का सौरभ मुरझाया,
जोकि रुपहले झीलकूल पर उगा हुआ था !
ऊष्म-चाँद ने तुहिन-चषक से पी ढुलकाया !
इसकी प्यास बुझाने कुहरे का न धुआँ था !
हुआ बनफ़शा मृत्त, सुरभि होगयी पलायित,
पवन परों पर चढ़कर, नीले जल पर विचरित !

ज्यों फेनिल, उज्ज्वल, मर्मर करती मदिरा की,
मोहक प्याली पीकर कोई प्यास बुझाता !
प्रबल ऐन्द्रजालिका बनी है उसकी साक़ी !
उसके दिव्य स्नेह चुम्बन का न्यौता पाता !
....
....

(१८२१)

क़ब्रिस्तान की एक ग्रीष्म-संध्या

(१)

पोंछ ले गया विस्तृत नभमंडल से पवन वाष्प का हर कन,
जिससे ढकी हुई थी अब तक अस्त सूर्य की किरन सुनहली।
धूमिलतर उस कुन्तल-दल से, अपनी किरन अलक का ग्रंथन,
दिन के मलिन नयन के चारों ओर कर रही संध्या पीली।
मौन, और संध्या-प्रकाश, जो हैं अप्रिय मानव को लगते,
उस अस्पष्ट सामने की घाटी में हो कर-बद्ध सरकते।

(२)

मुँदे दिवस की ओर छोड़ते अपनी सुषमाएँ वे जिनसे,
भर भर डाले, वसुंधरा नक्षत्र, पवन औ' सरिता सागर।
ध्वनि, प्रवाह औ' उजियाला देते अपने समर्थ कम्पन से,
इस रहस्य से भरे हुए जादू का ही अभिनन्दन-उत्तर!
रुके पवन, या जब चलते हैं, तो उनके वे स्पन्दन कोमल,
नहीं जान पाती हैं किंचित चर्च-शिखर की शुष्क तृणावलि।

(३)

अग्नि-राशि! तेरे इन शिखर नुकीलों से है वेदी बनती,
ऐसा लगता जैसे अग्नि-पिरामिड उठे हुए हों नभ पर।
तू भी उनके मधु गम्भीर रहस्यों का चुप होकर करती,
आज्ञा पालन, धूमिल दूर शिखर पर स्वर्गिक वर्ण सजाकर।
जिनके उच्चस्तल के, जो हैं क्षयशः, और दृगों से ओझल,
होते हैं संकुलित चतुर्दिक, नक्षत्रों में निशि के बादल।

(४)

मृतक मनुष्य सो रहे हैं अपनी समाधियों के ही भीतर,
और एक रोमांचमयी ध्वनि करते जब वे क्षयशः शायित।
अर्द्धचेतना, अर्द्धभावना, तम में उठती स्पन्दित होकर,
प्राणित वस्तु चतुर्दिक उनकी कीटमयी सेजों से स्वासित।
और शान्त निशि, मूक निलय के संग, जिसे वे करते हैं लय,
जिसके दुखमय सरसर स्पन्दन का अनुभव होता अश्रव्यमय।

मृत्यु इस तरह अनुष्ठान से पावन और नरम हो होकर,
नम्र और भयमुक्त बनी है, इस प्रशान्तमय निशि सदृश ही।
आशा करता मैं जिज्ञासु बाल सा क्रीड़ा कर समाधि पर,
कहीं मृत्यु बिलकुल ओझल कर पाती, मानव-दृग पथ से ही–
मधुर रहस्यों को, अथवा उच्छ्वासहीन निद्रा के भीतर,
वे मृदुतम सपने, अविरत अशयन ने रक्खा जिन्हें सँजोकर।

(१८१९)



अबाबील के प्रति

(१)

प्रमुदित प्राण ! तुझे अभिवादन !
कभी न था तू खग निश्चय !
नभ के या इसके समीप से,
परस रहा सम्पूर्ण हृदय !
पूर्व-चिन्तना-हीन कलामय, गीतावलि से भर अतिशय !

(२)

ऊँचे और बहुत ऊँचे चढ़,
धरती से कुदान भर कर।
अनल-मेघवत, अबाबील तू,
चढ़ता नीलिम पंखों पर,
उड़ने को चढ़ता तू गाता, गाता अब चढ़ता ऊपर !

(३)

अस्तोन्मुख होते दिनकर की,
कनक झमक हो रही द्रवित।
जिसके ऊपर उज्ज्वल बादल,
तू तिरता, होता धावित।
ज्यों अशरीरी किसी सौख्य की दौड़ हुई हो आरम्भित !

(४)

पीत अरुणिमा तव उड़ान के
बही चतुर्दिक द्रव होकर,
व्यापक दिवालोक में होता,
ज्यों नक्षत्र नहीं गोचर,
जैसे तू भी, पर सुनता मैं तेरे प्रखर उल्लसित स्वर !

(५)

ज्यों तीखे शर हैं उस, रजत—
प्रभा-मण्डल के पल पल पर।
जिसकी गहरी ज्योति क्षीण हो,
गिरती शुभ्र उषांचल पर!
जब तक नहीं अदृष्ट; सोचते हैं यह है गगनस्थल पर!

(६)

यह समस्त पृथिवी, व्योमांचल,
गुंजित तेरे ही स्वर से।
ज्यों रजनी जब होती सूनी,
तब एकाकी बादल से—
शशि बरसाता किरन; निलय आप्लावित होता इस जल से!

(७)

तू क्या है हम नहीं जानते,
है तुझसा क्या बहुत मृदुल?
छिप न सके इतने वे कन जो,
बरसाता सुरधनु बादल!
जितना चमकीला मृदुमय तुझसे वर्षित गीतों का जल!

(८)

छिपा भाव-आलोक-लोक में,
कोई कवि करता गुंजित,
अनचाहे गीतों को अविरत,
जब तक विश्व न संवेदित—
होता भय आशों के प्रति, थे पहले इससे जो, पेचित!

(९)

ज्यों कुलीन सुन्दरी कुमारी,
बैठी सौध-शिखर ऊपर

प्रणयाहत प्राणों को करती,
अपने गुप्त व्रणों में तर।
प्रिय-सा-मृदु संगीत बहाकर उमड़ा पड़ता कण्ठ-सुघर।

(१०)

तुहिन कणों की घाटी में ज्यों,
कनकवर्ण जुगनू चंचल,
बिखराता है रंग वायवी,
तृण कुसुमों पर जो अविरल।
जो हर लेते उसे नजर से फैला कर कोमल आँचल!

(११)

जैसे उस गुलाब के बनते,
हरित पत्रों के कुञ्ज सघन!
पीते सुरभि, ऊष्म पवनों से,
तब तक झरते रहे सुमन,
हुआ न जब तक इन कोकिल-पर-युत-चोरों का मूर्च्छित मन।

(१२)

उज्ज्वल हरित तृणावलियों पर,
वासंतिक फुहार के स्वर।
वर्षा--जागृत--कुसुमानन थे,
सस्मित, स्वच्छ, व सद्य, सुघर!
सब कुछ सुन्दर, पहुँच न सकता, तव संगीत-स्तर तक पर!

(१३)

सिखा हमें; हे आत्मा! या खग!
क्या क्या तेरे गीत मधुर?
ऐसे प्रणय याकि मदिरा के
कभी न सुने प्रशंसा-स्वर
जिनसे निःसृत हो, ऐसे दैविक मधु गीतों का निर्झर।

(१४)

हों समवेत गान परिणय के,
या हो जय की गीत लहर।
पर तेरी तुलना में लगते,
रिक्त-गर्व-युत फीके स्वर !
ऐसी वस्तु अभाव किसी का कहती जो अपने भीतर !

(१५)

पात्र कौन जिनसे बहता,
तेरे सुख गीतों का निर्झर ?
कैसे खेते, लहर, समतल भू,
कैसा नभ, औ' शैल-शिखर ?
कैसा प्रेम, और पीड़ा के अनजाने वे कैसे स्वर ?

(१६)

दुर्बलता न झाँक सकती है,
तेरे धवल-हास-पट पर,
और रोष की छाया तेरे,
आ सकती न निकट पलभर !
तुम करते हो प्यार, प्यार का दुःख न तुम्हें छूता है पर !

(१७)

जगते या सोते आता हो,
ध्यान मृत्यु का भी पल भर !
वस्तु और सच गहरी तुमको,
जान सकें न जिन्हें नश्वर,
वर्ना इतना स्फटिक स्वच्छ, संगीत-स्रोत होता क्योंकर ?

(१८)

गत आगत को लखते खोते,
व्यर्थ लालसाओं में तन।
और हमारे हास्य सत्यतम
में भी घुले वेदना-कण।
मृदुतम गीत वही निज जिनसे अति दुख-भावों का व्यंजन।

(१९)

तो भी यदि भय, घृणा, गर्व का,
कर सकते अवहेलन ही।
होते वस्तु, जनमती हैं जो,
ढुलकाने को अश्रु नहीं,
तो क्या हम तेरे प्रमोद के आ सकते थे पास कहीं?

(२०)

श्रेष्ठ साधनों से जिनसे,
उठते हैं हर्षप्रदायक स्वर।
पुस्तक के पन्नों पर अंकित,
उन कोषों से भी बढ़ कर,
हे वसुधा के अवहेलक! कवि को तेरा ही गुण प्रियतर!

(२१)

सिखा मुझे भी दे आधा,
उल्लास बुद्धि तेरी परिचित।
ऐसी नियमित मादकता,
कवि अधरों से होगी निःसृत।
ज्यों अब मैं सुनता त्यों उनको भी सुन लेगी यह संसृति।

(१८२०)



राका-गीत

त्वरितमयी, पश्चिमी लहर पर,
हे राका ! तू विचरण कर !
बाहर कुहरिल पूर्व-गुहा से,
जहाँ दीर्घ एकान्त दिवाभा—
में बुनती, भय, सुख के सपने,
करते तुझको भयतर, प्रियवर !
हो तेरी उड़ान द्रुततर !
तू लपेट अपनी आकृति पर,
तारक-अंकित भूरी चादर,

मूँद दिवा-दृग निज कुन्तल से,
चूम उसे जब तक न वह थके,
विचर, नगर, सागर, धरती पर,
फिर निज मादक छड़ से छूकर
आ, हे ! दीर्घ प्रतीक्षित !
जब मैं जगा, उषा को देखा,
तुझको मैंने आह भरी !

ज्योति उठी जब तुहिन पलायित,
कुसुम द्रुमों पर, दुपहर शायित।
थकित दिवा ने किया शयन जब,
रुक कर अतिथि अयाचित-सा तब,
तुझको मैंने आह भरी :
तेरा भाई यम आया, तुझको पुकारता,
मुझे चाहते हो तुम क्या ?

तेरा प्रिय शिशु 'शयन' नयन झिल्ली से ढकता,
गुन गुन कर बोला, दुपहर की मधुमक्खी सा,

"दे सकते क्या नीड़ मध्य में मुझे शरण ही ?"
मैंने उत्तर दिया तुरत ही,
'नहीं, तुझे भी नहीं !'
जब न रहेगी, तू जीवित यम आवेगा ही,
सत्वर ही, अति सत्वर ही,

जब तू उड़ जायेगी, शयन बुलायेगा ही !
दोनों का अहसान चाहिये, मुझे नहीं पर,
मुझे तुम्हारा मिले अनुग्रह राका प्रियतर।
तेरी आगामिनि उड़ान हो द्रुत से द्रुततर,
आ सत्वर ! हे राका सुन्दरि !
(१८२१)

—:o:—

'बादल' के प्रति

मैं लाता हूँ नव जल कन, पीते जिनको तृषित सुमन !
मधुर निर्झरों से भर-भर !
दुपहर-स्वप्न-निरत पल्लव, ले हलका साया नीरव !
धर देता उनके ऊपर !
मेरे पर से झर-झर आतीं, तुहिन बूँद जिनसे जग जातीं !
मृदु कलियाँ उनमें से हर तब
हिल डुल कर, थपकी पा सोती, छाती पर धरती मा होती,
सूर्य चतुर्दिक नर्तित वह जब !
उपल-अस्त्र के विकट प्रहार, रोक तुरत, फिर कर में धार !
हरित धरा को इन से श्वेत किया करता !
फिर मुझसे वह तुरत द्रवित, घुल जल में होते वर्षित !
जब प्रवेश करता गर्जन में हँस पड़ता !

(२)

मुझसे ही हिम छन-छनकर, गिरता पर्वत-शिखरों पर,
जिनके दीर्घ चीड़ के तरु होते कम्पित !
इन पर मैं पूरी निशिभर, इन्हें श्वेत सिरहाना कर,
झंझा की बाहों में हो जाता निद्रित !
राजित मेरे स्तूपों पर—जो मेरे आकाशी घर !
विद्युत मेरी पथ दर्शक !
किसी गुहा में युद्ध निरत—बन्दी तड़ित-घोष अविरत,
रह रह कर करता रव धर्षक !
प्रेतनीर पर होकर मोहित, भटका करता मौलिम लोहित,
सागर की गहराई पर,
झरनों पर, चट्टानों पर, औ' पर्वत के शिखरों पर !
झीलों पर, मैदानों पर !
गिरि, नद, के नीचे जाता—जहाँ जहाँ वह सपनाता,
आत्मा, प्रिया, संग है पर !
इतने में, मैं शीतरहित, होता पी नीली नभस्मिति,
तब वह बह जाता वर्षा में घुल घुल कर !

(३)

वह सूर्योदय रक्तारुण, धूमकेतु से लिये नयन,
और ज्वलित अपने पंखों को फैलाकर,
मेरा अंश गगन पर तिरता—उसके पीछे कुदान भरता,
जब कि भोर तारिका चमकती मृत होकर !
जैसे किसी पहाड़ी पर—की नोकीली चोटी पर,
जो हिलता-झुलता रहता भूकम्पन में।
ज्यों हो कोई गरुड़ ज्वलित, छन भर को ही हो राजित,
अपने कनकवर्णमय पर की आभा में,
जब अस्ताहत श्वास ले ले, नीचे जले उदधितल से,
प्रेम और विश्राम-सुगन्धों को पीता
और वसन तब संध्या का—पिघले सोने के रंग का—
नभ की गहराई के ऊपर से गिरता
तब मैं अनिल नीड़ ही पर, हरता थकन समेटे पर
शान्त कि ज्यों ध्यानस्थ कबूतर !

(४)

अर्द्धचक्रवत सुवर्ति विमल, भरे हुए ज्यों अनल धवल,
चन्द्र जिसे सब कहते हैं भाणी नश्वर,
सरक रही वह झिलमिल कर, मेरे मखमल के तलपर,
बिखरी है निशीथ के अनिलों से सत्वर।
जहाँ जहाँ पड़ती उसकी—लाल अलक्षित पगतल की
सुन सकते सुर ही केवल,
जिससे मेरी पतली छत—का बाना होता है चल,
उसके पीछे रही झाँकतीं नीहारें झिलमिल,
उन्हें देखता मैं हँसते, ज्यों उड़ते हों भँवराते
स्वर्ण भृंग के दल नभ में।
मैं करता अपना विस्तृत—जर्जर शिविर-वायु-निर्मित
जब तक, शान्त जलाशय सरिता सागर में,—
जो लगते उच्चस्तल से—गिरी पट्टियाँ ज्यों मुझसे,
बसते उडुगन चन्द्र नहीं उनके मन में !

(५)

बाँधा करता हूँ सूरज का सिंहासन—ज्वलित-वृत्त का मैं लेकर के शुभ्र-वसन,
मुक्तावलि से चंद्रासन रखता सजधज।
ज्वालामुख धूमिल हो जाते—तिरते नखत भीत थर्राते,
जब पवमान झकोर उड़ाते मेरा ध्वज !
खाड़ी से मैं खाड़ी पर—सेतु सदृश आकृति धरकर,
उफनाऊँ ही अम्बुधि पर
हो रवि-किरणों का शोषक द्रुत, लटका मैं बनता उसकी छत,
जिसके खम्बे होते हैं यह शैल-शिखर !
वह जय-अर्द्ध-चक्र-तोरण, जिसमें बढ़ता मैं लेकर,
अपने झंझावात, अनल और हिम के कन,
अकड़े वीर प्रभंजन के—बाँधे नीचे आसन के
इन्द्र धनुष है लख वरन !
ऊपर इसके रंग कोमल—करते निर्मित वृत्त अनल
जबकि धरित्री गीली नीचे करती रही हास्य वितरन !

(६)

मैं हूँ दुहिता प्रिय, कोमल, हैं मा बाप मृत्तिका, जल,
पोषक है यह नीलाम्बर !
छिद्रों से सागर तट के—जाता हूँ मैं बेखटके,
मैं परिवर्तनशील, किन्तु हूँ अविनश्वर !
क्योंकि बाद में वर्षा के, रहते नहीं बिन्दु जल के,
सूनापन छा जाता है नभ-आँगन पर !
और पवन रवि की किरणों के—उन्नत उदर कणों से अपने,
निर्मित करते हैं समीर का नील शिखर !
मैं हँसता मन में लखकर, अपना यह स्मारक नभ पर,
फिर मैं वर्षा गुम्फों से आता बाहर
आते शिशु, ज्यों जननि-कोख से—प्रेत निकलते ज्यों समाधि से,
उठता मैं इनको खण्डित करता सत्वर।

(१८२०)

'पश्चिमी प्रभंजन' के प्रति

हे, प्रमत्त पश्चिमी प्रभंजन, शरद्काल के जीवन प्राण !
हुए पलायित, तेरी अलख उपस्थिति से पल्लव निष्प्राण।
जैसे प्रेत पलायन करते तांत्रिक से होकर अपमान,
कपिल, श्याम और पीले ज्वर से रक्तिम वर्ण, पर्ण म्रियमाण,
पड़े ढेर के ढेर महामारी से जैसे हों मर्दित,
बिठा सपक्ष बीज निज रथ में, पहुँचाता तू उन्हें त्वरित,
काली, शिशिराई शय्या पर, जहाँ अंधशीतल-तल पर,
तब तक है प्रत्येक सुप्त, ज्यों शव समाधि के हो भीतर,
जब तक तेरी नील बहिन वासंती, नहीं गुँजाती स्वर,
आकर अपनी तुरही से, इस स्वप्निल धरती के ऊपर,
(हाँक मृदुल कलियों के दल को खाने हवा) नहीं भरती,
जब तक प्राणित वर्णों, गन्धों से पर्वत, समतल धरती,
हे, उन्मत्त ! सकल जल थल पर घूम रहा तेरा ही तन,
रुद्र और ब्रह्म तू दोनों ! सुन मेरी, पाश्चात्य पवन !

(२)

उच्च विलोड़ित गगन मध्य में, तेरे द्रुतनद के ऊपर,
स्वर्ग और अम्बुधि की ही गुम्फित शाखों से झर झर कर,
गिरे धरित्री के च्युत पर्णों से ही, शिथिल बलाहक दल;
वर्षा विद्युति के ये सब उपदेव, पड़े हैं अब निश्चल,
तेरी उस पवमान लहर की नील सतह ही के ऊपर,
ज्यों लहराते हों उत्कट, उज्ज्वल, चल कुन्तल हहर हहर,
किसी भयंकर मीनद* के सिर पर से उत्थित हो होकर,
धूसर क्षितिज तटी से लो, अम्बर की ऊँची चोटी पर,
केश-गुच्छ हैं उस आगामिनि, आँधी के ही तो स्थापित !
तू बनता मर्सिया वर्ष का, मरणोन्मुख है जिसकी गति,
जिसके बृहद् समाधिस्थल पर यह रजनी जो गमनोद्यत-
होगी गुम्बज; तेरे सब केन्द्रीकृत अभ्र कुल की छत,
जिसके सघन वायुमण्डल की छाती से ही फट फटकर,
बरसेंगे काले घनकण, औ' ज्वाल, उपल तू जा सुन कर !

---

* कौलिकी

(३)

तूने उसे जगाया जब था ग्रीष्म-स्वप्न में आत्म विभोर,
वह नीलिम भूमध्यार्णव, जो कँकरीले टापू की ओर।
'बैयाई'* की खाड़ी में था, पड़ा नींद से अलसाया,
अपनी स्फटिक-निर्झरों की कुण्डलि द्वारा था दुलराया,
और देखता था निद्रा में वह प्राचीन सौध, मीनार,
जो करते हिलोर के घनतर-दिवस-मध्य में कम्प-विहार!
नीली काई कुसुमदलों से आच्छादित थे सब सुन्दर!
इतने मृदु थे मन होता था मूर्च्छित उनका चित्रण कर!
तू बढ़ता दुर्द्धर्ष वेग से महासिन्धु की छाती चीर!
पथ देते तत्क्षण तुझको, भयकम्पित अटलान्टिक के वीर!
किन्तु दूर नीचे खिलते सामुद्रिक पुष्प व स्पंदित वन,
वारिधि तल के नीरस कोंपल दल का पहिने हुए वसन!
तेरा रव सुन, सहसा होते, भय से पीले कम्पित म्लान,
आतंकित हो लुंठित होते स्वयं सभी सुन, हे पवमान!

(४)

होता यदि मैं जीर्ण पत्र, तो तू धरता निज अंचल में!
संग व्योम में उड़ता तेरे, होता यदि द्रुत बादल मैं!
यदि हिलोर ही होता, तेरी शक्ति तले पिस लेता श्वास!
पर तेरे अकूत बल का मैं, कर पाता पलभर आभास।
हे अदम्य! केवल तुझसे मैं होता यदि थोड़ा स्वच्छंद!
काश! कहीं होता ऐसा मैं, शैशव में था ज्यों निर्बंध!
तब मैं तेरा साथी बनकर, भरता चक्कर अम्बर पर,
चाह कि तेरी आकाशी गति से हो जाऊँ मैं द्रुततर,
नहीं दिवा सपना सा लगता, कभी नहीं तब यों रोकर,
विवश प्रार्थना तुझसे करता कठिन आपदा में फँस कर!
आह! उठाले, मुझे लहर-सा, पल्लव-सा, बादल-सा प्रान!
बिंधा पड़ा जीवन काँटों पर तन है मेरा लहू लुहान!
हाय! समय के कठिन भार के नीचे मैं बन्दी नतशिर,
मैं भी तो तुझसा ही हूँ उच्छृङ्खल, द्रुत, अभिमानी नर।

*एक प्राचीन जल मग्न नगर।

अपनी बीन बना मुझको भी ज्यों कानन है तेरी बीन,
इससे क्या, यदि मैं भी होता, ऐसे ही मृत पत्र-विहीन !
तेरी शक्तिमयी भैरव स्वलहरी दोनों से निश्चय,
लेगी वह गहरी, शिशिराई, ध्वनि, मृदु, यद्यपि करुणामय !
बना आज तू मेरे प्राणों को ही निज प्राणों का धाम !
रुद्रप्राण ! तू बनजा मुझसा, हो जा मुझसा ही उद्दाम !
कर विकीर्ण मेरे मृत भावों को अविरल भूमण्डल पर,
जैसे छितरे मृत पल्लव नव जीवन पाने को भूपर।
और इसी मेरी कविता के सम्मोहन द्वारा सत्वर,
ज्यों अनबुझ भट्ठी से गिरते, भस्म अग्नि के कण उड़कर,
त्यों ही तुझसे बिखरें मेरे शब्द मनुजता के भीतर।
मेरे अधरों के ही द्वारा तू इस सोती पृथ्वी पर,
इस भविष्यवाणी का बन जा अब तू शंखनाद भरपूर,
आया है यदि शरद रह सकेगा बसंत फिर क्या। अब दूर ?

(१८१९)

'नेपल्स' के निकट लिखित पद्

दिनकर की गरमाई फैली, नील गगन है अब निर्मल,
त्वरित और चमकीली लहरें, नाच रही हैं सागर पर।
नीलिम द्वीप, और शोभित है पारदर्शिनी शक्ति प्रबल,
नीललोहिता दोपहरी की, हिम-आच्छादित शैलों पर।
गीली धरती का उच्छ्वास मन्द मन्थर है रहा बिचर,
चारों ओर मुकुलहीना अपनी कलिकाओं के दल के,
रूप अनेक स्वरों का धर कर एक हर्ष ही रहा बिखर,
वही पवन में, खग-कलरव, में आप्लावन में सागर के
और 'नगर' स्वर स्वयं-सभी कोमल 'निर्जनता' के स्वर से।

(२)

देख रहा हूँ मैं गहराई का अब वह अनमर्दित तल,
हरित और बैंजनी समुद्री-तृणदल, बिखरा है ऊपर।
देख रहा हूँ मैं तट पर आती वे लहरें उच्छृङ्खल,
ज्यों तारों के झरनों में बिखरा प्रकाश है घुल-घुल कर,
बैठा हूँ मैं सागर तट के रेणुकणों पर एकाकी।
दोपहरी के ज्वार भरे अर्णव से उठ-उठ कर द्युतिमय,
घिरी चतुर्दिक मेरे फिरती, चमक झमक उस चपला की।
नपी तुली गति में बँध कर के उठती एक अनोखी लय,
कितनी मृदुमय ! काश संग जो होता कोई अन्य हृदय !

(३)

आह ! नहीं आशा है मेरे पास, स्वास्थ्य का शेष न कण,
नहीं शान्ति है मेरे मन में, मिली प्रशान्ति नहीं बाहर !
और नहीं संतोष, तुच्छ जिसके समक्ष होता है धन,
जिसको पाया सन्यासी ने मग्न साधना में होकर !
विखरा करता जो अन्तर-का गौरव-छत्र शीश पर धर,
नहीं कीर्ति है, नहीं शक्ति है, नहीं प्यार, अवकाश नहीं,
देख रहा हूँ औरों को मैं, जाता इन सबसे घिर कर !
मुस्काते वे जीते, जीवन को कहते हैं हर्ष वही !
पर मुझको-यह प्याली हाय ! न जाने कैसी भरी गई !

(४)

तो भी अब नैराश्य पिघल कर, हो आया है स्वयं नरम,
जैसे अब ये पवन और जल की धारायें हैं मृदुतर !
काश ! कहीं नीचे सो पाता, थके हुए बालक के सम !
रो पाता मैं जो इस चिन्ताओं से पूरित जीवन पर !
जिसको अब तक सहता आया, अभी और सहना जीकर,
जब तक शयन समान काल की छाँह न गिरती है मुझपर,
और न जब तक ऊष्म समीरण में पाऊँ मैं अनुभव कर,
गाल शीत; जब तक न सुनूँ मैं अपने मरते मानस पर,
लेते हुए समन्दर को, अंतिम निश्वास घुटन से भर !

(५)

अपनी शोकमयी वाणी में कह सकते कुछ, यदि शीतल —
मैं होता, जैसे मैं हूँ जब बीत गया है दिवस मधुर !
इतनी जल्दी बूढ़ा होकर, जिसका मेरा खोया दिल !
अपमानित करता इसको—असमय यह शोक प्रदर्शन कर !
कुछ शोकातुर कह सकते हैं—क्योंकि एक मैं ऐसा नर,
जिसे न प्रीत मनुज करते—तो भी होते हैं शोकान्वित,
इस दिन के विपरीत—जोकि यह तब हो जायेगा दिनकर
इसके दोषहीन गौरव के ऊपर—जब यह अस्तंगत,
खटकेगा, तो भी सुखदायक—स्मृति में ज्यों उल्लास विगत !

(१८१८)

'मानसिक रूपश्री' के प्रति

किसी अदृष्ट शक्ति की यह अभिशापित छाया,
हम सबसे अदृश्य तिरती है विचरण करती,
इस अनेकरूपा जगती के ऊपर, यह अपने पंखों से,
जो इतने अस्थिर हैं जितने फूल-फूल का सौरभ लेते,
जैसे ग्रीष्मानिल हैं, शशि-किरनों के सदृश बरसते हैं जो
देवदार पर्वत के पीछे; यह निज अस्थिर दृष्टि डालती,
है प्रत्येक मनुज के उर आनन पर, विचरण करती
जैसे सांध्य-गगन पर उठतीं गीत-हिलोरें वर्णावलियाँ,
जैसे तारक-ज्योतित-पट पर, फैले दूर-दूर तक बादल,
जैसे हो संगीत मधुर की बीतीस्मृति, अथवा हो कुछ भी,
जो इसकी आभा को हो प्रिय, या प्रियतर इसके रहस्य को।

हे सौन्दर्य देवि! मानव के भावों पर, रूपों पर अपने—
वर्णों से हो राजमान करती उनको है सुन्दर पावन!
कहाँ गई तू? क्यों तूने तज दिया हमारे इस प्रदेश को?
यह धूमिल विस्तृत उपत्यका अश्रुकणों की, कितनी निर्जन—
औ' एकाकी? पूछ कि रवि की रश्मि न बुनतीं हैं क्यों सुरधनु?
उस सम्मुख पार्वत्य सरित पर? क्यों कोई जो कभी ज्योति से,
उठता एक बार भरभर कर, अब हो जाता असफल, निष्प्रभ!
क्यों भय और स्वप्न एवं यह जन्म मरण के प्रश्न चिरंतन,
इस धरती की दिवसाभा पर डाल रहे हैं अपनी छाया?
करुणामय क्यों है मनुष्य को ऐसी जगह कि जिसके ऊपर,
घूम रहे हैं प्यार, घृणा, और आशा, निराशा?

और किसी उच्चतर विश्व से नहीं मिला है,
अब तक किसी संत और कवि को इसका उत्तर!
इसीलिये राक्षस, व प्रेत, या स्वर्ग, नरक की संज्ञायें सब!
बनी रही हैं ये प्रतीक अब तक उनके असफल प्रयास की!
नश्वर जादू, जिनकी अभिव्यंजित आभा भी,
नहीं विलग हमको कर सकती संदेहों से,
अवसर से औ' गतिमयता से,

उन सबसे, जिनको सुनते या देखा करते !
तेरी मात्र ज्योति से जैसे गिरि का सघन कुहासा फटता !
अथवा निशा पवन के द्वारा किसी शान्त संगीत वाद्य के—
तारों से टकरा टकरा संगीत बिखरता !
अथवा धवल-सुधा निशीथ की निर्झरिणी के ऊपर बहती !
जीवन के अशान्त सपने भी पाते सत्य, और सुन्दरता !

प्यार आश, और आत्म प्रतिष्टा मेघों से आते जाते हैं !
किन्हीं अनिश्चित क्षणों हेतु ही जैसे उन्हें उधार लिया हो !
यदि मानव होता अमर्त्य, औ' सर्वशक्तिमय,
तो तू होती नहीं अजानी, दुखदायी जैसी तू अब है !
तब तेरी गौरवमय गति को स्थिर कर रखता अन्तराल में !
तू संदेशवाहिनी संवेदन भावों की,
जो प्रेमिक के नयनों में घटते, बढ़ते हैं !
तू जो मनुज भावनाओं की पोषक जननी,
ज्यों मरणोन्मुख ज्योतिशिखा के लिये तिमिर है !
मत जा, अपनी परछाईं के आ जाने पर !
मत जा, वर्ना यह समाधि भी बन जायेगी,
जीवन भय के सदृश तिमिरमय कटु यथार्थता ।
जब था शिशु मैं फिरता, प्रेतों की तलाश में,
गुंजित कक्षों, गुम्फों, ध्वंसों, नखत-ज्योतिमय वन प्रान्तर में !
मृतमानव के विषयक अतिशय बातों के पीछे पीछे,
अपने भय कम्पित चरणों से घूमा करता !
मैं विषमय वचनावलियों को सुनता जिनको—
सुनते, सुनते ऊब गया है तरुण आज का ।
मैंने उनको नहीं सुना, देखा न उन्हें ही !
जब जीवन के प्रश्नों पर मैं करता चिन्तन गहराई से,
जबकि पवन की मृदुल झकोरों से मधुमय होता था क्षण-क्षण !
सभी प्रमुख वस्तुएँ जगातीं जो लाने को,
कलियां और विहग बालों के समाचार को,
सहसा गिरी ज्योति परछाईं तेरी मुझ पर,
मैं भर कर चीत्कार, बद्ध कर हाथ विभोर हुआ भावों में !

मैंने तब प्रण किया कि अपनी सर्वशक्तियाँ,
तुझको ही कर दूँगा अर्पित, तुझको तेरे लिए नहीं क्या-
किया वचन का मैंने पालन ? अब भी अपने-
कम्पित उर से और निर्झरित--युगल-नयन से
मैं सहस्र घटिकाओं के प्रेतों का करता हूँ आवाहन !
जो प्रत्येक सुप्त अपनी निस्वन समाधि में,
अध्ययन के आवेशयुक्त या स्नेहिल उमंगमय
दृश्य-कुंज-पाँतों से अपनी वे निहारते मुझे रहे हैं---
कितनी ही ईर्ष्यालु निशा में; उन्हें ज्ञात है---
मेरी भ्रू को कभी न सुख ने चमकाया है,
बंधनमुक्त रहा इस आशा से कि कभी तू
अंधदासता के पाशों से मुक्त करेगी इस पृथ्वी को,
कि तू हे अभिशापमयी मोहकता देगी उनको जो कुछ
शब्दों से रह गया अव्यंजित !

दोपहरी के बाद दिवस भी हो जाता है
पावनतर गम्भीर और है मधुर साम्यता
शिशिर काल में भी; आभा शारदीय गगन पर,
जिसे सुना या देखा जाता नहीं ग्रीष्म में
जैसे वह हो नहीं; न होना इसका सम्भव।
अस्तु तुम्हारी शक्ति प्रकृति के सत्य सरीखी
उतरे मेरे निष्क्रय यौवन पर भरदे निज
विमल शान्ति का रस भावी जीवन में मेरे !
उसके जो करता आया तेरा आराधन,
अर्चन करता जो तेरे प्रत्येक रूप का
जिसको तेरे सम्मोहन ने, शुभ्र सुन्दरी !
ग्रथित किया अपने से होने भीत, प्रीत करने लेकिन सम्पूर्ण मनुज को।

(१८१६)

स्मृति के विहगों* से

दूर रहो ! दूर रहो ! तुम दूर रहो !
ओ स्मृति के विहगो ! मुझसे दूर रहो !
खोजो कोई दूर शान्ततर नीड़ सुभग !
इस निर्जन वक्षस्थल की तुलना में खग !

लाओ मत मेरे अन्तर के पतझर को,
अपने इस मिथ्या बसंत की खबरों को।
एक बार ही इसे छोड़ कर जाने पर,
व्यर्थ तुम्हारा यहाँ हुआ है आना फिर।

विहगो ! तुम जो रचते हो तिनकों से घर,
उस भविष्य के ही गुम्बज की चोटी पर।
भग्नाशाएँ, आशाओं पर हैं उन्मन !
मरते सुख, यम ने घोटी, जिसकी गर्दन !
होंगे चन्चु तुम्हारी को वे उपयोगी,
बहुत काल तक वह शिकार सुख भोगेगी।

(१८२१)

* मूल में यहाँ 'हेलशयन' पक्षी का नाम आया है, जो प्रायः मछली पकड़ने के लिए सिखा पढ़ा कर काम में लाये जाते हैं।

एक क्षण

बिदा हुए हम जैसे होता नहीं मिलन,
कहीं दृश्य से अधिक हमारा है अनुभव !
मेरी छाती के भीतर हैं बोझिल मन,
मेरे प्रति शंका से पूरित वक्षस्थल तन,
बना अमुक्त, मुक्त को चला गया है क्षण।

चला गया, वह क्षण, सदैव को चला गया
ज्यों, दामिनी चमक करके निःशेष हुई।
या हिम-पर्त गिरी, सरिता-जल गला गया,
या जैसे सूरज की किरन, विकीर्ण हुई,
उठे उभार पर लील गई काली छाया।

समय बीच अस्तित्व पृथक था उस क्षण का,
जैसे दर्द भरे जीवन का पहिला हो !
भ्रम के रस से मिला हुआ प्याला सुख का,
कितना था मधु पूर्ण, व्यर्थ था लेकिन जो,
इतना मधुर कि मुझसे चिर को हुआ बिदा !

मधुर अधर ! मेरा यह हृदय छिपाता जो,
'नष्ट हुआ था तुमसे ही इसका जीवन' !
विदा न तुम से कभी मरण तब पाता यों,
धरे जिसे तव चमकीला नीहारिल कण !

सोच रहा हूँ कितनी हल्की थी कीमत
उस क्षण की, जो यों पाया, यों हुआ विगत !

(१८२१)

भारतीय पवन के प्रति

तेरे सपनों से मैं जगता,
पहिले मधुर शयन में निशि के !
जब हौले समीर है बहता,
उजियारे तारे जब चमकें
जगता मैं तेरे सपनों से,
आत्मा है चरणों में मेरे,
जो ले आयी जाने कैसे,
मुझको वातायन में तेरे !

भ्रान्त पवन बेहोश हो रहे,
तम पर औ' स्तब्ध झरनों पर,
चम्पक, सौरभ व्यर्थ खो रहे,
मृदुल स्वप्न-भावों से होकर,
हाय ! शिकायत बुलबुल की तो,
उसके दिल पर ही होती प्रिय,
मरना जैसे तुझ पर मुझ को,
तू है इतनी क्योंकि मुझे प्रिय !

आह ! उठाले, मुझे घास से,
मृत, निष्प्रभ, मूर्च्छित होता मैं !
पीत पलक, अधरों पर बरसे,
तव स्नेह, चुम्बन-बरखा में
मम कपोल हैं श्वेत शीतमय,
बढ़ती जाती दिल की धड़कन !
आह ! सटा ले ! अपने से यह
जहाँ थमेगा अन्तिम कम्पन !

(१८१९)

अप्रैल १८१४-के पद्य

(१)

दूर रहो ! शशधर के नीचे काला है अवनीतल,
त्वरित मेघ पीगये साँझ की अन्तिम पीत किरन को !
दूर रहो ! टेरेंगे तम को, शीघ्र वायु के संकुल !
घन-निशीथ कफनायेगा ही अब नभ-द्युति पावन को !
रुको नहीं, अब समय गया, हो दूर ! कह रही, हर ध्वनि,
असत-बन्धु-भावना न अन्तिम आँसू-कण ले उकसा !
शीत-दीप्त-प्रिय-दृग रुकने का करता नहीं समर्थन।
दिखलाते, कर्त्तव्य, भूल, तुझको फिर पथ निर्जन का !

(२)

दूर ! दूर ! अपने उदास, खामोश, उसी घर को चल,
और तिक्ततर अश्रु बहा इसके उजड़े अलाव पर।
प्रेतों सी आतीं-जातीं, निहार छायाएँ धूमिल,
जातीं करुण-हास के जो अजनबी जाल उलझा कर !
तैरेंगे तव शीश चतुर्दिक शिशिर-वन्य पल्लव, मृत,
चमकेंगी तव चरण तले वासंतिक कलियाँ ओसिल !
मृत को ढकते कुहरे से जग, या आत्मा, होगी च्युत,
पूर्व, अर्द्धनिशि-भ्रू, उषास्मिति, तुम औ' शान्ति, सकें मिल !

(३)

है विश्रान्ति निशीथ मेघ-छाँहों के पास स्वयं की,
क्योंकि श्रांत पवमान मौन, शशि गहराई में खोया !
पाता है आराम तनिक अब चिर अशान्त अर्णव भी,
जो भी करता कम्पन, श्रम, दुख, नियत नींद में सोया !
तुझे कब्र में शयन मिलेगा, करें न प्रेत पलायन,
किया तुझे प्रिय जिन्हें कि उस गृह, कुंज और उपवन ने !
मुक्त न तेरी याद, न पश्चाताप, न तेरे गायन,
दो स्वर के संगीत, एक मधुमय स्मिति की ही द्युति से

(१८१४)

हे, प्रसन्नते !

हे, प्रसन्नते ! विरल विरल ही,
तू है आती !
तज मुझको इतने दिन से तू,
कहाँ गई थी ?
बीते हारे-हारे हैं मुझको निसिवासर,
चली गई ऐसे तू मुझको जग से तज कर !

(२)

पा सकता तेरा कैसे फिर,
मुझसा प्राणी संग ?
मुक्त-हर्षितों की साथिन पर
दुख पर कसती व्यंग !
छोड़ उन्हें, जिनको है तेरी नहीं जरूरत,
मिथ्या देवि ! किया है तूने सबको विस्मृत !

(३)

ज्यों भिसुडुया परछाईं से
कम्पित पल्लव की।
त्यों तू भगती दुःख झाईं से,
इन निश्वासों की।
'तू समीप है नहीं,' शिकायत इसकी करती,
पर इस पर तू कान तनिक भी कब है धरती ?

(४)

लाओ, तो ये गीत करूँ फिर
हर्षित लय में बन्द !
करुणा न भाता, आती है पर,
पाने को आनन्द !
आयेगी ज्यों क्रूर पंख करुणा तेरे,
काटेगी, होगा फिर संग रहना मेरे !

(५)

देवि, प्यार तू जिनको करती,
मुझे प्रीतिमय सब,
सद्य भूमि, नव पर्ण पहिनती,
निशि तारकमय जब।
शिशिरकाल की साँझ सवेरे का आलम,
लेती है जब जन्म कुहर पर्त स्वर्णिम!

(६)

हिम हैं प्रिय, सब रूप चमकते;
प्रिय लगते मुझको तुषार के!
लहर, पवन, तूफान, गरजते,
सब बनते हैं पात्र प्यार के!
जितने भी हैं रूप प्रकृति के प्रिय लगते,
वे भी मनुज दैन्य से पावन हो सकते!

(७)

मुझे शान्त निर्जनता है प्रिय,
प्रिय समाज है ऐसा।
मेरे तेरे मध्य, शान्त मय,
कुछ और मद जैसा,
अन्तर क्या? बस यही हुई उपलब्ध तुझे,
खोज रहा मैं अभी, किन्तु कम प्रिय न तुझे!

(८)

प्रिय है प्यार किन्तु उसके पर
उड़ जाता वह द्युति सा!
सब हैं प्रिय पर मुझको प्रियतर,
देवि नहीं है तुझसा।
तू ही मेरी प्यार, जिन्दगी, आशा सत्वर,
हे प्रसन्नता देवि! बना मेरा उर निज घर!

(१८२१)

ग्रीष्म और शरद्

एक प्रखर आभामय, हर्षित वह दुपहर था,
जब चमकीले जून मास का अन्त हुआ था!
जब उत्तरी पवन उठकर संकुल बन जाते,
चाँदी के बादल, शैलों से तिरते आते!
क्षितिज-कूल से, और जिस तरह है शाश्वतता,
निर्मल नभ इन सबके परे, निर्वसन करता!
सकल वस्तुएँ, आनंदित जो रवि के नीचे,
वन्य तृणावलि, सरिता, खेत बाँस के पोरे!
'बेंत' पत्र जो मंद झकोरों में मुस्काते!
और दीर्घतर तरुओं के भी सुदृढ़ पत्ते।

यह था शरद्, मूक हो आते जब विहंगदल,
गहन वनों के भीतर और मौन जब निश्चल—
हो जातीं अभेद्य हिम में; कर देती हैं जो,
उच्च जलागारों के पंक और दलदल को—
लहरदार दृहों से; जो हैं सख्त ईंट से!
निज बच्चों से घिरे, तापते जब जनसुख से—
बड़े अलाव चतुर्दिक, कँपते हैं तो भी जब!
हा! बेघर बूढ़े, भिक्षुक क्या करते हैं तब!

(१८२०)

—के प्रति

भीत चुम्बनों से तेरे मैं, सौम्य सुन्दरी !
मेरे चुम्बन से पर तुझे न करना है भय !
भरी हुई है मेरी आत्मा इतनी गहरी,
नहीं बोझ बन सकती तेरे ऊपर निश्चय !

मैं तेरी नजरों से, लय से, गति से डरता,
पर तुझको मेरे इन सबसे तनिक न हो भय !
है निर्दोष भक्ति मेरे उर की, मैं करता
जिससे हूँ तेरा पूजन, आराधन, मृदुमय !

(१८२०)

संगीत

कोमल ध्वनियाँ मर जाती है, लेकिन उनका,
संगीत झनझनाया करता है स्मृति-पट पर,
जब मुरझा जाते सुमन, जिया करता सौरभ,
उनसे ही जगी चेतना के भीतर बसकर

जैसे गुलाब के मरने पर सब पंखड़ियाँ,
हो जाती हैं संकुलित, प्रिया की शैया पर !
ऐसे ही तेरी याद, न होगी जब तू प्रिय,
सो जायेगा यह प्यार स्वयं झपकी लेकर !

(१८२१)

चेतावनी

(१)

गिरगिट पोषित होते, वायु, उजाला, पीकर,
प्यार और यश ही होता है, कवि का भोजन !
काश ! कहीं चिन्ता से पूरित विस्तृत जग पर,
कर पाते उपलब्ध सहज ही इसको कविगण !
हाँ, यदि वे भी अपने को गिरगिट सा करते,
तो पा सकते थे इसको कर कम से कम श्रम !
पाते बदल रंग कवि भी जो गिरगिट के सम !
जिसको वे अनुरूप हर किरन के हैं धरते,
बीस बार दिन में रंग निज काया में भरते ?

(२)

कवि भी ऐसे ही इस शीतल जगतीतल पर,
यों, वे गिरगिट के होते समान जग भर में।
अनजाने प्रारंभिक जन्म काल से लेकर,
सागर के नीचे वे दूर किसी गह्वर में,
जहाँ उजेला हैं गिरगिट होते परिवर्तित।
जहाँ न मिलता प्यार, वहाँ कवि बदला करते !
यश भी तो है छद्म प्यार; यदि कुछ पा जाते—
कोई ला, तो कभी न होना इस पर विस्मित,
कवि (इन दोनों छोर बीच) होते परिवर्तित !

(३)

तो भी करो न दुस्साहस लेकर धन या बल,
कवि के मुक्त दिव्य-मानस को करने कलुषित !
खायें अन्य खाद्य यदि यह उज्ज्वल-गिरगिट-दल,
छोड़ वायु और धूप, शीघ्र ही होंगे विकसित,
ऐसे ही, जैसे हैं और भूमि पर जीवित !
अन्य आत्मजन, छिपकलियों के ही समान हो !
तुम हो फिर, नक्षत्र शुभ्रतर की संतानो !
तुम अवनीश परे की हो, आत्माएँ उज्ज्वल !
लौटा दो यह दान इसी पल !

(१८१९)

क्षयशः शशि* से

और एक मृतमय महिला सी कृश औ' पीली,
कम्पित, पतनोन्मुख, 'वेष्टित रेशमी वसन में,
अपने सौध-कक्ष से बाहर, वह परिचालित—
अपने क्षयशः मानस की उन्मद औ' दुर्बल,
भ्रान्त अलक्ष्य विहारों द्वारा, उठती है शशि,
कृष्णवर्ण-प्राची में, धवल अरूप राशि सी !

(काव्यांश—१८२०)

* अँग्रेजी में 'शशि' को स्त्रीलिंग माना जाता है।

परिवर्तनमयता

(१)

हम हैं वे बादल निशीथ के, जिनसे ढँक जाता है शशधर,
जो कितने अशान्त होकर के, चलते, चमके, कम्पित होते!
भरते ज्योति-शिराओं से निज तम को, तो भी रजनी सत्वर,
घिरती चारों ओर, और वे अपने को हैं चिर को खोते।

(२)

या हम वे विस्मृत वीणा हैं, जिनके उलझे हुए तार से,
हर परिवर्तित वायु कम्प से, निःसृत होते हैं अनेक स्वर,
जिसकी कृशकाया लाती है नहीं दूसरे गति-प्रहार से,
एक भाव, अथवा दुहराती नहीं विगत संगीत लहर पर!

(३)

हम सोते तो-स्वप्न हमारा कर सकता है शयन गरलमय,
जो जगते तो-भ्रान्त भाव ही दिन को कलुषपूर्ण कर सकते!
सोचें, समझें, तर्क करें, या हँसें, करें हम नयन अश्रुमय,
प्रिय दुख का करते आलिंगन, या चिन्तायें दूर त्यागते!

(४)

यह सब बात एक ही सी है, सुख ही हो विषाद हो अथवा,
अब भी बाधाहीन पड़ा है! इसके जाने का है रस्ता!
हो भी नहीं मनुज का बीता-कल उसके भावी कल जैसा,
क्योंकि सभी कुछ अस्थिर जग में थिर तो बस परिवर्तनमयता!

(१८१४)

वधूगीत

खोल, शयन के द्वार सुनहरे !
शक्ति, रूप का मिलन जहाँ रे !
बने विश्व उनका उजियारा !
जलधि-कुहरमय में ज्यों तारा !
निशि, चल नीचे सब तारों से !
तम, रो ! पावन ओस-अश्रु से !
अस्थिर शशि न कभी मुस्काई,
इतने सच्चे जोड़े पर रे !
खोल शयन के द्वार सुनहरे !
दृग न चलें निज हर्ष स्वयं रे !
शीघ्र, त्वरित घटिका अवसर तव
उड़ान का हो, और पुनर्नव !

परी, देव, आत्मा, रक्षक हो,
पावन तारो ! कुछ न भूल हो,
लौटो सोया हुआ जगाने,
उषसि ! देर तक दो मत सोने !
क्या होगा ओ, हर्ष, ओह भय,
होगा अगर न जो सूर्योदय ?···
सँग आओ रे !
खोल, शयन के द्वार सुनहरे !

(१८२१)

विलियम शेली[1] के प्रति

लहर कुलाँचे भरती है तट के ऊपर,
तरणी है जर्जर दुर्बल !
कृष्ण वर्ण है सिंधु, पवन हैं गये बिखर,
घिरते हैं काले बादल !
हे प्रसन्न बालक ! तू मेरे सँग अब चल
चल तू मेरे संग लहर यद्यपि पागल।
और प्रभंजन शिथिल, नहीं हमको रुकना,
लेंगे सत्ताधीश छीन तुमको वरना !

तेरे भाई और बहिन को छीन लिया,
किया उन्होंने उन्हें व्यर्थ है अब तुमको।
मुरझा दी मुस्कान, अश्रु को सुखा दिया।
हाय, उन्होंने जो होते पवित्र मुझको।
अन्ध-पन्थ औ' अपराधी कारण से ही,
दास हुए हा ! वे अबोध बचपन से ही।
मेरा नाम और तुमको कोसेंगे वे,
क्योंकि सदा निर्भीक और हम मुक्त रहे।

आ तू मेरे लाल, साथ में मेरे चल,
सोया है दूसरा शान्तमय।
निकट जननि-उर के चिन्ता से जो विह्वल !
जिसे बनादेगा तू सुखमय !
अपने विस्मय की बिखरा मुस्कान सुघर,
उस पर जो सचमुच ही अपना है प्रियतर !
जब सुदूरतर देशों में तू जायेगा !
सबसे प्यारा सखा उसी को पायेगा !

सदा न जुल्मी राज करेंगे तू मत डर,
कुपथ-पुजारी सदा नहीं इस पृथ्वी पर !

1—शेली का पुत्र, जिसकी इटली के प्रवास में मृत्यु हो गई।

खड़े हुये यह उसी क्रुद्ध नद के तट पर,
भर दी मौत इन्होंने जिसकी लहरों पर।
जिनकी भूख सहस्र घाटियों से गहरी,
इनके चारों ओर क्रुद्ध फेनिल लहरी।
इनके दण्ड, कृपाण, भग्न नौकाओं से,
देख रहा मैं शाश्वत लहरों पर बहते।

चुप चुप चिल्ला मत भोले बालक मेरे,
नौका का हिलना-झुलना, शीतल बूँदें।
करती क्या भयभीत, प्रमत्तगर्जना रे!
बेटा तू हम दोनों बीच नयन मूँदे।
मेरे, अपनी माँ के, हमको है लक्षित,
वह झंझा जिसके भय से तू है कम्पित!
उसकी काली भूखी कर्मे इतनी कब?
क्रूर दास सत्ता के जितने फिरते अब!
रक्षक लहरों पर से तुझे छीनते सब।

तेरी स्मृति में यह घंटा हो सपने सम,
बीते हुए दिवस का शीघ्र चलेंगे हम,
रहने को ही नीले सागर के तट पर—
स्वर्णमयी इटली के, जो है पावनतर,
या हम ग्रीस, मुक्त जन की जो है माता!
उनके वीरों की प्राचीन शौर्य-गाथा,
सिखलाऊँगा मैं तेरी शिशु-जिह्वा को!
लपट बनायेगी जो तेरी आत्मा को!
ग्रीक कथा की—इस प्रकार तू पा सकता,
देशभक्ति-अधिकार जन्म से जो मिलता!

(१८१७)

प्रोजरपाइन* का गीत

(ऐना के मैदान में पुष्प चुनती हुई)

(१)

पावन देवि ! धरित्री माता !
तेरी अमर कोख से पाते—
जन्म मनुज, पशु और देवता !
पर्ण, कुसुम, किसलय मुस्काते,
प्रोजरपाइन ! अपने शिशु पर—

(२)

कुहर पिलाकर सांध्य तुहिन के,
कल-कुसुमों की तू है पोषक !
घड़ियों के शिशु, सुघर न बढ़ते,
होकर वर्ण, गंधमय जब तक !
बिखरा निज प्रभाव स्वर्गिकतर,
प्रोजरपाइन ! अपने शिशु पर !

(१८२०)

*धरती माता के लिये, प्रयुक्त यूनानी शब्द !

ओ, जग ! जीवन ! ओ काल !*

चढ़ता हूँ जिनके अन्तिम सोपानों पर,
जहां खड़ा पहले, अब कम्पित हो उस पर,
कब गौरव-प्रौढ़ता तुम्हारी लौट रही ?
कभी नहीं, हा ! कभी नहीं !

रजनी और दिवस की सीमा से बाहर,
चला गया उल्लास कभी का उड़ान भर !
नव-बसंत, ग्रीष्म, औ' शरद्, श्वेत हिममय !
मूर्छित मन में डोली पीर; उठी सुख-लय ?
कभी नहीं, हा ! कभी नहीं !

(१८२१)

* प्रस्तुत रचना का सौन्दर्य मूल में उसकी संगीतात्मकता के गुण के कारण है, जो अनुवाद में नहीं आ पाया। पर इस कविता में कवि के सम्पूर्ण जीवन की व्यथा मूर्त हो उठी है।

. . . .

नृपति नहीं होना चाहूँगा !
शापपूर्ण है, प्रेम दिखाना—
सत्ता के पथ को, जो दारुण
और कठिन, शासित, झंझा से !

नहीं चाहता चढ़ना मैं साम्राज्य-पीठ पर,
अवस्थित जो हिम के ऊपर,
जिसे आत्म का अंशु,
उच्च-मध्याह्न-काल में
पिघला कर कर देता पानी !

तब, हे नृपति, विदा ! तो भी मैं—
होता एक; न जिससे 'चिन्ता'
इतनी शीघ्र भेंट कर पाती !
वह और मैं, होते सुदूर अति,
रखते पशु दल अपने, उच्च हिमालय ऊपर !

(काव्यांश—१८२१)

कैशरलिय[1] के शासन में लिखित

(१)

कब्र में बर्फीले शव बन्द,
मूक जड़ हैं पाषाण मलीन।
कोख में भ्रूण हुए हैं मृत्त,
और उनकी माँ, रक्त विहीन।
श्वेत तट 'ऐलबियन'[2] सम दीन,
नहीं है अब किंचित स्वाधीन!

(२)

पुत्र है उसके पथ के खंड,
अचेतन मिट्टी हृह समान।
पगों से मर्दित, जड़ हृत्पिण्ड,
धार कर गर्भ जो कि निष्प्राण—
मुक्ति है, करती जो कि प्रयाण,
मृत्यु से दंशित अब म्रियमाण!

(३)

आह! तब कुचल, मना आनंद,
बध्य तेरे का रक्षक कौन?
सभी का तू स्वामी स्वच्छंद,
हृह का, भ्रूणों का शव मौन—
उसी के सब तेरे, निर्बंध,
पाटते कब्र तलक का पंथ!

(४)

शोर-गुल उत्सव का निर्बाध,
'काल' और 'ध्वंस' पाप का हास!
सुन रहा क्या 'वैभव' का नाद?
गूँज जिसकी है सत्यानाश!

१—शेली के समकालीन इंग्लैण्ड के शासक का नाम।
२—इंग्लैण्ड का प्राचीन नाम।

देवता 'डैचालस'[1] की जीत,
कर रही है सच को जो मूक,
बनेगी तेरा परिणय-गीत!

भयावह पत्नी को ला आह!
'भीति', 'संघर्ष' 'अशान्ति' सँवार—
जिन्दगी-आँगन में इस बार,
बिछायें सेज तुझे; कर ब्याह,

'नष्टि' से, ओ, जुल्मी, साषीश—
दिखायेगा तुझको वह राह,
वधू की शैया तक, वह ईश!

(१८१९)

1—मदिरा का देवता।

इंग्लैण्ड के मनुष्यों से[1]

आँग्ल देश के मनुजो ! क्यों यह भूमि जोतते ?
उनको, जो हैं धनशाली, तुम जिनसे मर्दित ?
इतनी चिन्ता और परिश्रम क्यों तुम करते,
उन वस्त्रों को, जिनसे शोषक होते सज्जित ? १

क्यों तुम, उन्हें खिलाते, पहिनाते औ' करते—
रक्षा उनकी, झूले से लेकर समाधि तक ?
अकृतज्ञ रानीमक्खी के झुण्ड सभी ये,
नहीं पसीना केवल, खून पियेंगी अनथक ! २

आँग्लदेश की मधुमक्खियो ! अस्त्र, जंजीरें,
औ' कोड़े तुम ढाल रही हो, बोलो किसको ?
डंकहीन मक्खियाँ तुम्हारी ताकि न करदें,
नष्ट तुम्हारे स्वेदश्रम की विवश उपज को ! ३

क्या अवकाश, शान्ति आराम, कभी भी पाते,
खाना और पनाह प्यार का मरहम शीतल।
क्या है जो इतना महँगा तुम हो खरीदते,
सह अशेष पीड़न, इतने भय से हो आकुल ? ४

तुम बोते हो बीज, काटते किन्तु दूसरे !
दौलत तुम खोजते, और का घर है भरता !
कपड़े तुम बुनते, पर और पहिनते फिरते,
वस्त्र ढालते तुम, पर और जिन्हें है गहता ! ५

१—शेली की सर्वसाधारण के लिये लिखी गई कविताओं में सबसे प्रसिद्ध कविता—उसकी राजनैतिक कविताओं का संकलन इसी नाम से प्रकाशित हुआ—उसकी मृत्यु के पश्चात्।

बोओ बीज, न जुल्मी जिन्हें काटने पायें!
खोजो दौलत! पर न जाय वह ठग के घर में!
कपड़े बुनो! आलसी कोई पहिन न पाये,
ढालो अस्त्र! गहो अपनी रक्षा को कर में! ६

काँप रहे तुम छिद्रों, कोठारों से घर में!
रहते और भव्य भवनों में—तुमसे बनते!
हिला रहे क्यों शृंखल, खुद कसलीं जो कर में?
दृष्टि डालता है इस्पात, ढला जो तुमसे! ६

अपने हल, फावड़े, और हँसिये करघे से
खोदो, अपनी कब्र, समाधी करो विनिर्मित!
बुनते चलो, कफन अपना, जब तलक नहीं ये,
सुघर आँग्ल-भू बृहद् मक़बरे में हो परिणत? ८

(१८१९)

शशि से

क्या पड़ी पीली थकन से ?
निलय पर चढ़ते हुए, लखते धरा को ही निरंतर,
या बिना संगी भ्रमण से,
बीच में उन तारकों के, जन्म जिनका दूसरा पर,
और परिवर्तित सदा जो, हर्षहीन-नयन सदृश ही,
योग्य अपने स्थैर्य को ही, जो न पाता पात्र कोई ?

(१८२१)

मृत्यु

(१)

पीली, शीतल और चन्द्रमामय स्मिति को यह,
तारकहीन निशा उलका के सदृश गिराती,
एकाकी और घिरे जलधि से उस टापू पर,
पूर्व कि असंदिग्ध आभा हो सूर्योदय की,
जो है जीवन शिखा; हमारे चरण चतुर्दिक
संड़ भग रही, उनके बल के क्षय से पहले !

(२)

ओ, मानव ! आत्मा के साहस में जकड़े रह,
अपने को सांसारिक पथ की तूफानी छाँहों में होकर।
और मेघ गर्जन करता फुत्कार चतुर्दिक,
विस्मयपूर्ण दिवस की आभा में सोयेगा !
जहाँ नरक और स्वर्ग मुक्त तुमको रक्खेंगे,
जाने को निर्बाध नियति के भू-मण्डल को।

(३)

विश्व हमारे सर्वज्ञान का ही पोषक है,
जो कुछ भी हम अनुभव करते, उसकी जननी,
और मृत्यु आगमन भयावह उस मानव को,
जो इस्पात-शिराओं से आवृत्त नहीं है !
जब सब ज्ञान और अनुभव, दर्शन यह सारा,
एक अवास्तव रहस्य सा बीतेगा अपना !

(४)

सभी गुप्त वस्तुएँ कब्र की वहाँ मिलेंगी,
लेकिन इस ढाँचे को तुम न वहाँ पाओगे !
यदि यह सुन्दर नयन, कान विस्मय से पूरित,
अब फिर दर्शन और श्रवण को नहीं रहेंगे !
उस सबका जो है महान, आश्चर्य पूर्ण सब,
इस अशेष परिवर्तन के असीम प्रान्तर में।

(५)

कौन कह रहा है अनकहनी कथा मृत्यु की ?
कौन कर रहा निरावरण है इस भविष्य को ?
कौन कर रहा चित्रित छायाएँ जो नीचे,
विस्तृत मुड़ती गुम्फों में जन पूर्ण कब्र की ?
या भावी आशाओं को है कौन मिलाता,
उस भय और प्रेम से, जो है हमको गोचर ?

(१८१७)

'अपोलो'[1] के प्रति

शयनहीन घंटे हैं जब मुझको निहारते,
अम्बर के ऊपर से विस्तृत चन्द्रातप से,
जब मैं लेटा डाले तारक-अंकित पर्दे,
धूमिल दृग के व्यस्त स्वप्न पर पंखा झलते।
मुझे जगाते, शुभ्र उषा उनकी जननी जब,
कहती उनसे, गये स्वप्न और चंद्र सभी अब!

(२)

तब मैं उठता, नीलिम नभ गुम्बज पर चढ़ता,
घूमा करता हूँ पर्वतों और लहरों पर,
सिन्धु-फेन के ऊपर अपना वसन छोड़ता,
मेरे चरण अग्नि मेघों में देते हैं भर!
मुझसे दीप्ति भरी गुम्फों में हरित भूमि को,
पवन छोड़ देता मेरे नग्नालिंगन को!

(३)

सूर्य-किरण, जिनसे वध करता मेरे शर हैं,
'छल' का, जिसको प्रिय है तमसा, भय है दिनसे।
सभी मनुज जो दुष्कर्मी, या दुष्कल्पक हैं,
भगते मुझसे मेरी किरनों के गौरव से,
सद् मानस और मुक्त कर्म नूतन बल पाते,
जब तक नहीं निशा के शासन में खो जाते!

(४)

मेघों, सुरचापों, कुसुमों का करता पोषण,
देकर स्वर्गिक वर्षा उन्हें; मैं वृत्त चन्द्र का,
और पवित्र सितारों के वे कुंज चिरंतन,
तुल्य वसन के मेरे बल से मन्थन सबका,

---

१ कला साहित्य का देवता।

दीपित जितने दीप स्वर्ग या पृथ्वी पर ही,
एक शक्ति के अङ्ग सभी जो है मेरी ही !

(५)

राजित होता दोपहरी को श्याम शिखर पर,
फिर अनचाहे चरणों से नीचे आता हूँ !
घूमा करता अटलांटिक मेघों में जी भर,
हो विक्षुब्ध रुदन करते, जब मैं जाता हूँ !
और दृष्टि क्या हर्ष दायिनी है उस स्मिति से,
जिससे उन्हें शान्त करता पश्चिमी द्वीप से ?

(६)

मैं ही नयन, स्वयं को यह भूमण्डल जिससे,
लखता और जानता अपने को स्वर्गिक यह !
सभी रागिनी वाद्य-यंत्र से या कविता से,
सब भविष्यवाणी, औषधियाँ मेरी ही यह।
सभी निसर्ग कला की आभा मिली गीत से,
मेरे, विजय-प्रशंसा निज अधिकार शक्ति से !

(१८२०)

'काल' के प्रति

हे, अगम्य अम्बुधि ! तेरी लहरें हैं वत्सर !
गहन व्यथा की धारें तेरी, काल महार्णव !
खारी हैं, वे मानव के आँसू पी पी कर।
तू अकूल आप्लावन, जकड़ा करते हैं तव
ज्वार और भाटे, नश्वरता की सीमायें,
ऊबा वध से, पर तू अधिक क्षुधाकुल होकर,
रे ! भग्नांश उगलता है निज अशिष्ट तट पर।
छली, जबकि तू शान्त, भयावह झंझा में, पर
ऐसा कौन कि जो तुझसे समता कर पाये ?
हे, अगम्य सागर !

(१८२१)

प्रेम-दर्शन

निर्झर सरिता से मिलते,
सरिता मिलती सागर में!
पवमान गगन के घुलते,
चिर की भावना मधुर में!

एकाकी कुछ न जगत में,
सब वस्तु नियम दैविक से।
घुल घुल मिलती आपस में—
मैं क्यों न मिलूँ फिर तुझ से?

लो, शैल चूमते नभ को,
हैं ऊर्मियाँ परस्पर ग्रंथित!
है क्षमा न कुसुम-बहिन को,
करती यदि बन्धु उपेक्षित!

रवि-कर से भू का बंधन,
चूमती जलधि शशि किरनें!
किस अर्थ सभी ये चुम्बन,
यदि मुझे न चूमा तुमने?

(१८२०)

ओज़ीमैंडियस

मुझे मिला प्राचीन देश से प्रत्यावर्तित यात्री;
जिसने कहा, विराट और अर्धाङ्गहीन, प्रस्तर के
दो पग खड़े हुए मरु में, जिनके समीप बालू पर,
अर्द्ध-भग्न, विध्वस्त एक मुख शायित, ऊपर जिसके—
भ्रू, मुरझा लब, शीतल आज्ञा का उपहास, बताते।
इसका शिल्पी भली भाँति समझा था वे लिप्सायें,
जो अब भी जीवित, अङ्कित इन जड़ चीजों के ऊपर,
बाहु हँसा जो उन पर, उर था जिसने इनको पोसा,
"औ' आधार-स्तल के ऊपर देते शब्द दिखाई।
मेरा नाम है ओज़ीमैंडियस, राजों का मैं राजा
देखो मेरे कार्यों को तुम औ! बलवान, निराशित!"
शेष नहीं कुछ बृहद भग्न के पतन चतुर्दिक सूनी
समतल नग्न असीम बालुकाराशि दूर तक व्यापित,

(१८१७)

"भटक रहा है यह, आवारा दिवास्वप्न-सा,
मानस की धूमिल आवश्यकताओं में से।
सूने वनों, पथों से, जो प्रतीत होते हैं,
महासिन्धु, गृहहीन, असीम, अनावेष्टित से।"

(काव्यांश १८२१)

जब गूँजेगा तर्क की नाद

वे स्वर्णावृत्त मक्खियाँ,
जो, कचहरी की धूप में गरमाते हुए
इसके भ्रष्टाचार से मोटी हुई हैं, वे क्या हैं ?
समाज की रानी मक्खी ! पोषित होती हैं जो,
यांत्रिक के श्रम पर, क्षुधाग्रस्त खेतिहर,
उनके लिये विवश करता है हठीली भूमि को देने को,
अनचाही इसकी फसलें; और सामने झंझाग्रस्त आकृति,
मांसहीन दैन्य से भी पतली, जो व्यर्थ करती है,
सूर्य वंचित जिन्दगी अस्वास्थ्यकर खानों में,
श्रम में खींचती है दीर्घ मृत्यु को,
उनकी गौरवाभा के पूर्ण पोषण के लिये,
अनेक मूर्छित होते हैं पिसते हुए श्रम में,
ताकि कुछ को आलस्य के दुख और चिन्ताओं का ज्ञान हो !

तू बता तो, यह राजा और परोपजीवी कहाँ से पैदा हुए ?
कहाँ से आई रानी मक्खियों की अप्रकृत क़तार,
जो लादती हैं श्रम, और अपार दैन्यता,
उनके ऊपर, जो बनाते हैं उनके महल,
चलाते हैं उनकी दैनिक रोटियाँ !
(ये पैदा हुए हैं) दुर्गुण से, काले घृणित दुर्गुण से,
बलात्कार से, पागलपन से, धोखेबाजी से, और भूल से,
उन सबसे जो दीनता पैदा करती है, और बनाती है,
इस धरती में कंटकाकीर्ण वन्यता;
लिप्सा, प्रतिशोध और हिंसा से —
और जब गूँजेगा तर्क का नाद,
प्रकृति की वाणी के समान, जो तीव्र होकर जगा देगा
राष्ट्रों को, और मनुष्य देखेगा कि दुर्गुण हैं,
अनैक्य, युद्ध, और दैन्यता, कि गुण हैं
शान्ति, और सुख और ऐक्य,
जब मनुष्य की परिपक्वतर प्रकृति उपेक्षा करेगी
अपने बचपन के खेलने की वस्तुओं की,

राजसी आभा अपनी चकाचौंध की शक्ति खो देगी,
इसकी सत्ता चुपके से निःशेष हो जायेगी,
सज्जित सिंहासन खड़े होंगे अगोचर,
राजसी-कक्ष में तीव्रता से क्षत होते हुए,
जबकि वंचना की खरोज उतनी ही घृणामय
और अलाभकर हो जायेगी,
जैसी अब सत्य की है !

(काव्यांश—'क्वीनमैब' से—१८१३)

नरक

(१)

नरक है एक नगर, लन्दन की तरह का,
भीड़ से भरा हुआ, धुएँदार है शहर !
सब प्रकार के मनुष्य, नष्ट हो गये हैं जो,
मनबहलाव से अल्प या नितान्त शून्य !

(२)

वहाँ एक...है, खो चुका है निज,
बुद्धि को दिया है बेच, है न जो किसी को ज्ञात।
घूमता है यत्र तत्र दुहरे प्रेत के समान,
और यद्यपि है कृश, जितनी हो प्रवंचना,
धनवान और क्रूर होता ही जाता है !

(३)

वहाँ 'चांसरी कोर्ट' और एक है नृपति,
निर्माण करती भीड़, चोरों का एक दल,
जन जैसे चोरों के प्रतिनिधि; एक सैन्य—
दल और एक राज्य-ऋण का प्रसार है !

(४)

खाद की है, किन्तु एक कागज की योजना,
और है साधन; कि जिसकी है व्याख्या यों,
मधु मक्षिकाओ ! मोम रक्खो, मधु दो हमें !
और हम बोयेंगे जबकि व्योम धूपमय,
फूलों को जो कि काम, जाड़े में आयेंगे !

(५)

चर्चा बड़ी वहाँ होती इनक़लाब की,
और अवसर बड़ा है एकतंत्र का वहाँ,

जर्मन सिपाही हैं, डेरे और कोलाहल,
गर्जन है, कोठरी हैं और चिथड़े यहाँ!
भ्रमजाल, आत्महत्या, 'मैथडवाद' है!

(६)

कर का प्रसार है, गोश्त पर, रोटी पर,
मदिरा पर, चाय औ' पनीर भी न मुक्त हैं,
पोषित हैं जिनसे विशुद्धतम देशभक्त
पीते हैं सत्त दस गुणित इनका ये, और
लड़खड़ाते हुए निज शैया तक जाते हैं!

(७)

हैं वकील, जज, वृद्ध संग के पियक्कड़ हैं,
साहूकारों के दलाल चांसलर औ' पादरी।
छोटे और बड़े हैं लुटेरे; और छंदकार,
पर्चेबाज, सट्टे के धन्धे में लगे मनुष्य!

(८)

युद्धों के गौरव से भूषित, यशस्वी जन,
वस्तुएँ हैं, जिनकी वणिज स्त्रियों पर है,
बहलाना, झुकना, औ' मुस्कराना दूर दूर,
जब तक न जो कुछ भी स्वर्गिक है नारी में,
हो जाय क्रूर, शिष्ट, चिकना, अमानवीय!

(९)

श्रम, और आरोप, चीत्कार, क्रन्दन,
अभंग, उपदेश, ऐसे सब कोलाहल;
हर व्यक्ति अनथक निज श्रम करके ही,
सोचता कि लूटता हूँ अपने पड़ोसी को!

(१०)

और ये मिलते सब राजसीय भोजों पर,
उत्सवों की दावतों, महान कवियों के संग,

राजनीतिमय चाय, जलपान पर जहाँ,
शीघ्र युद्ध वार्ताएँ, युद्ध में बदलती हैं।

(११)

और ये है नरक कि जिसके गुबार में,
सब निन्दनीय, लीन निज पाप कर्म में,
हर एक डूबता डुबाता अपने को है,
एक दूसरे से पापमय हो गये हैं सब,
कर्म करने को आता है न दूसरा।

(१२)

यह सब झूठ है कि प्रभु नाश करता है,
स्वर्ग का प्रमुख वकील तब था कहाँ गया?
पहली बार जब इस झूठ को गढ़ा गया,
इन सब शर्मनाक बातों का हो अन्त अब
यह विष धातुओं से भी हुई खान है!*

(काव्यांश, 'पीटर बेल द थर्ड' १८१९)

*पूरी कविता काफी लम्बी है और लन्दन के ऊपर लिखी तीन प्रसिद्ध कविताओं में इसकी गिनती है। शेली ने तत्कालीन क्षयमान समाज का जीता जागता चित्र इस कविता में प्रस्तुत किया है।

सच्चा प्यार

अपेक्षा से न देख, मेरी देवि ! आज के, ग्रंशशः जन्म के, इन प्रसूनों को,
जिन्हें अपने अंतरतम से वह बिरवा उगाता है,
जिसका फल, तेरी सूर्यताप सी दृष्टियों द्वारा प्रस्फुरित है,
होगा नन्दन वन के द्रुमों के समान !
दिवस आगया है, और तू मेरे साथ उड़ जायेगी।
मंद मर्त्यता का जो कुछ भी मेरा है उसकी ओर,
पर तू रहेगी मुझे तो भी एक कुमारी अग्नि के सदृश
सघन, गम्भीर, और अक्षय की ओर !
जो मेरा नहीं, बल्कि मैं ही हूँ, फिर तुम भी मिल जाओगी ?
एक वधू की सी, हँसते, हँसते !

घड़ी आगई है ! नियत नक्षत्र उग आया है !
उतरेगा जो एक शून्य बन्दीघर पर !
जिसकी दीवारें ऊँची हैं, द्वार सुदृढ़ हैं, और है मोटे संतरियों का समूह !
लेकिन सच्चा प्यार, कभी इस प्रकार दमित नहीं हुआ !
वह सभी प्राचीरों को लाँघ जाता है।
तड़ित के समान अदृश्य तीव्रता से !

इसके बंधनों को चीरते हुए, आकाश की मुक्त वायु सा,
जिसे वह छू तो सकता है, पर पकड़ नहीं सकता !
यम के सदृशतर, जो विचार पर सवारी करता है
और अपना मार्ग बनाता है !

मंदिर, मीनार, महल, और अस्त्र की पाँति में !
वह या उनकी अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त होता है !
क्योंकि वह अपने शव का भी विस्फोट कर सकता है !
और अवयवों की शृंखलाओं से, हृदय की दर्द से,
प्राण को धूल और कोलाहल से, विमुक्त कर सकता है।

(काव्यांश—'एपिप' से—१८२०)

आह्वान ![1]

दासता है यह, काम करने के बाद दाम,
नित्य प्रति जीने भर के ही लिए पाते हो!
जैसे अंध कोठरी में, वैसे निज अंगों में ही,
शोषकों के लाभ हेतु वास किये आते हो!

ताकि बनी रह सके तुम्हारी जिन्दगी ही इन—
करघा, कृपाण, हल फावड़े निमित्त ही!
इच्छा या अनिच्छावश शोषकों की रक्षा और,
पोषण के लिए हों तुम्हारे सब कृत्य ही!

दासता, तुम्हारे लाल सूख सूख मरते और,
पीली कमजोर उनकी माएँ हुई जाती हैं!
मैं तो यहाँ बोलता हूँ, किन्तु सूख होके वहाँ,
गिरते हैं शिशिराई वायु जब आती है!

दासता है, भूख से तड़पना उस अन्न बिना,
जिसे धनवान उन कुत्तों को खिलाते हैं!
जो कि मोटे मस्त होके उनकी आँख के समक्ष,
अति तृप्त होके निंदियाते हुए आते हैं!

आते परदार खोज से हैं जब हारे थके,
तंगनीड़ में परिन्दे भी विराम पाते हैं!
हिंस्र जन्तुओं को भी तो वन्य मांद देती ठौर,
झंझा और हिम जब वायु में समाते हैं।

---

[1] प्रस्तुत काव्यांश शैली की 'मास्क ऑफ ऐनार्की' (विद्रोह का छद्म-वेश) से उद्धृत है। उक्त कविता का स्वतन्त्र भावानुवाद है। अंग्रेजी जनता की जिस विषमता का इस कविता में चित्रण किया है, वह हमारे देश के लिए भी उतनी ही घटती है! इस कविता में कार्ल मार्क्स के 'मजदूरी के लौह नियम' (iron law of wages) की पूर्व कल्पना है।

दिन भर काम करने के बाद आते जब,
घोड़े बैल का भी होता अपना निवास है !
पवन गरजते तो उष्ण द्वारों बीच तब
पाले हुए श्वानों का ही होता निज वास है।

गधे और सूअर भी ठौर पाते हैं उन्हें,
वक्त पर ठीक ठीक खाद्य मिल जाता है।
घर तो सभी का है अंग्रेज, पर तू ही तो,
काम करने के बाद ठौर तक न पाता है !

यही दासता है, जिसे बर्बर मनुष्य या कि,
अपनी तंग मांद बीच जंगल के जीव भी !
सहते कभी न जैसे तुमने यह सहा है सब,
ऐसे दुर्गुणों का जानते हैं वे न नाम भी !

क्या है तू स्वतन्त्रता ? जवाब इसका जो काश !
जीवित समाधियों से दास दे पाते कहीं ?
मांग से ही, सपने के धूमिल प्रतीक सम,
अत्याचारियों के झुण्ड भागते तुरन्त ही।

तू है, हे स्वतन्त्रता ! न जैसा छली कहते हैं,
कि एक छाया के समान शीघ्र मिट जाती है।
अन्ध-सत्य तू नहीं है, या कि नाम जिसकी बस।
कीर्ति की गुहा में अनुगूंज रह जाती है ?

हे स्वतन्त्रता की देवि ! तू तो मजदूर को है,
रोटी जो कि रक्खी हुई एक शुभ्र मेज पर।
एक स्वच्छ और सुख पूर्ण गृह मध्य यह,
पाये उन्हें आये निज श्रम से ही लौट कर।

शासकों की ठोकरों से त्रस्त जन समूह को,
अन्न, वस्त्र, और अग्नि, तू ही है स्वतन्त्रता !
आज जैसा मेरा देश है अकाल, शाप-ग्रस्त,
किसी भी स्वतन्त्र देश को हूँ मैं न देखता !

तू है प्रतिबन्ध! मद अंध धनशालियों को,
पैर वे शिकार के गले पर धरते हैं जब।
तेरी हुँकार बध्य सांप सा फुँकारता है,
ज़ालिमों के झुण्ड भी उछलते गिरते हैं सब!

तू ही न्याय! जिसकी पवित्र इन विधियों को,
बेच सकता है न कोई स्वर्ण मानदण्ड से!
बिकते वे जैसे इंग्लैण्ड में, तू देखती है--
ऊँच, नीच सबको ही दृष्टि निज अखंड से!

तू है बुद्धि कभी नहीं, वे मनुष्य जो स्वतन्त्र,
प्रभु-दण्ड की न रंच, करते हैं कल्पना,
खोलें पोल यदि धूर्त धर्मध्वजा-धारियों की।
करें वे पाखण्ड की प्रचंड यदि खंडना।

होने दो इकट्ठा देशवासियों को एक ठौर,
अति गम्भीरता से शब्द वे उच्चारो तो!
जिनको न पहले सुना गया कभी, 'तुम्हें
प्रभु ने बनाया है स्वतन्त्र, तुम स्वतन्त्र हो।'

एक द्रुत और आश्चर्यपूर्ण गर्जना से,
अत्याचारियों से चारों ओर घिर जाओगे।
सीमाहीन होते हुए सिन्धु के समान उनके,
रणमत्त सैनिकों को बढ़ता हुआ पाओगे!

और उनकी तोपों के मुख भी प्रलय की ज्वाल,
तुम पर अबाध बरसाते हुए आयेंगे!
जब तक न रक्त वायु शापित बनेगी इन,
अश्व-टापों, रथ-चक्रों की बर्षाओं से!

सधी हुई संगीन यदि निज तीखी नोक,
आतुर हो अङ्गरेजी लोहू में डुबाने को !
चमकाने दो यदि यह चमकाती इसे,
जैसे व्यग्र होता है क्षुधित अन्न पाने को !

जैसे वन होता है सघन और स्वरहीन,
ऐसे तुम खड़े रहो प्रशान्त दृढ़ चित्त से !
कर हों तुम्हारे बद्ध, और वह दृष्टियाँ हों,
बनती हैं तीक्ष्ण अस्त्र जो अजेय युद्ध के !

और इसके बाद अत्याचारियों की हो मजाल,
रौंदने बढ़ें जो अश्व टापों से तो रोको मत !
चाबुक के प्रहार, वार तलवार छुरियों के,
रोको मत, करना चाहें जो कुछ भी हो प्रमत्त !

हाथ जोड़ लो, हिले न दृष्टि रंच मात्र भी,
भय का निशान, विस्मय का न लेश हो।
उनकी ओर देखो, वध जैसे ही तुम्हारा करें,
उनका प्रचंड रोष जब तक न शेष हो।

तब वह हार मान शर्म से गड़ेंगे और,
आये थे, जहाँ से वे वहां से लौट जायेंगे।
और लोहू अपने ही आप तब बोलेगा,
गालों पर निशान लाल लज्जा के छायेंगे।

हर नारी देश की इन्हीं को लक्ष्य कर तुरंत,
संकेत हेतु अपनी उँगलियाँ उठायेंगी !
साहस न होगा अभिवादन करें भी, यदि,
बंधुओं की भीड़ पथ जो में मिल जायेगी !

युद्धों के लड़ाके बलवान सच्चे शूरवीर,
ख्याति पाई रण आपदाओं के हटाने में।
जायेंगे वे उनकी ओर जो स्वतंत्र होंगे, और,
शर्म से गड़ेंगे, ऐसे नीच संग जाने में।

प्रेरणा असीम यह संसार देगा और,
वाष्प के समान सारा देश उठ जायेगा !
ओज का प्रसार, औ' संकेत हो भविष्य का ही,
भूमि-कम्पनाद दूर दूर सुना जायेगा !

और यह शब्द सब आसमान चीरेंगे,
शोषकों के लिये मृत्यु फैसला सुनायेगी !
हर मस्तिष्क, और उर में उठेगी गूँज;
बार, बार, बार, यह ध्वनि सुनी जायेगी !

जागो ! सिंहों से दहाड़, वीर नींद छोड़ आज,
उठो ! अब अजेय संख्या में झूम झूम कर !
शृङ्खलायें तुमने जो पहिनी थीं नींद में,
हिला कर गिरादो, ओस बूँद सम भूमि पर !
तुम हो बेशुमार, और वे हैं बस मुट्ठी भर !

(काव्यांश, मास्क ऑफ ऐनार्की'–१८१९)

शूकर का कोरस

तुझको प्रणाम, तुझको प्रणाम, दुष्काल वीर !
तेरा सिंहासन शोणित पर, है नग्न, वीर ।
शैतान ! जिन्दगी तेरी करता सुमंडित —
नूतन किरणों के संग, नीति के दृश्य, हरित —
थैले[1], जब तक करुणा, न भीति तुझ से जागृत
तुझसे सुखियों के आयोजन हो गये श्रमित ।
जब उठता है, कंकाल रूप, तेरा अकाल !
लुढ़कें चहुँदिशि में माँस-खंड, हड्डी, कपाल !
रे ! तुझे बधाई देंगे हम करके अमंद,
वो हर्षनाद होगा जिससे तूफान मंद !

तुझको प्रणाम, तुझको प्रणाम, दुष्काल वीर,
तुझको प्रणाम, धरती के राजा, महावीर !
जब तू उठता, अधिकारों को करता खंडित,
जब तू उठता, शोषण हो जाते हैं लुण्ठित !
घिरता, तेरी भीषण मुस्कानों का घमंड !
महलों, मंदिरों, और कब्रों पर, हे प्रचण्ड !
हम दौड़ेंगे, होंगे तेरे मंत्री गुलाम !
तेरी क़तार के पीछे, करते नष्ट-भ्रष्ट !
जब तक न एक सी हो जायेगी अखिल सृष्टि !

(काव्यांश—'स्वैलोफुट द टाइरेंट'—१८२०)

१—Green Bags से आशय द्रव्य की थैलियों से है।

कवि का अवसान

धूमिल और श्रृंगमय शशि नीचे लटकी,
सिन्धु प्रभा का दिया उँडेल क्षितिज तट पर,
जिससे उमड़ चले पर्वत, पीला कुहरा
भरा असीम फिज़ाँ में, उसने जी भर कर।
पीत सुधा को पिया, न चमका एक नखत,
नहीं एक स्वर सुना; प्रभंजन जो पहले
थे भय के निष्ठुर संगी, सब सुप्त हुए
वहीं शैल पर, उसके दृढ़ आलिंगन में
थम के झंझावात! अंधगति तेरी से,
खंडित मलिन निशा औ' तू कंकाल बृहद्!
जिससे संचालित इसका दुर्दम जीवन
अपनी ध्वंसक सर्वशक्तिमयता में तू!
इस नश्वर जग का नृप; हत्या के रक्तिम
खेल और दुर्गंधित अस्पताल से ले
देशभक्त पावन शैया, भोलेपन की—
सेज हिमानी, शूली, राजा की गद्दी,
एक प्रबल रथ तेरा आवाहन करता
ध्वंस टेरता, भाई यम को एक विरल
और राजसी वध्य जिसे तैयार किया
जिसने घूम घूम दुनिया में, तृप्त हुआ
खा जिसको; हर थकन! मनुज आयेंगे निज
कब्रों को फूलों या रेंगे कीड़े सम;
तेरी काली वेदी पर इससे न अधिक
चढ़ी कभी अवहेलित भेंट भग्न उर की।
जब उन्मेषित हरित विराम स्थान हुआ
तब पंथी के चरण गिरे, वह समझा अब
मृत्यु ढकेगी उसे त्वरित, उसकी अन्तिम
दृष्टि समक्ष बृहद् चंद्र जिसने विस्तृत
वसुधा की पश्चिम रेखा पर चक्र करके
नीचे बलशाली श्रृंगों को खिसकाया,

जिसकी आद्यामी किरनों में बुनी हुई
तमसा यह लगती घुलती सी; सोता यह
कहीं शैल मालाओं पर, हो भग्न बृहद्
धूमकेतु वह डूबा; कवि शोणित धड़का
जो कि स्वैर्ब रहस्य भरे संवेदन में,
औ' निसर्ग के आलोड़न गतिमयता पर,
हाय! मंद और क्षीण हुआ धीरे धीरे!

आह! उड़ गया तू न कभी जागेगा फिर
अब न कभी मायावी दृश्य निहारेगा,
जो है तुझको रहा शुद्धतम उपदेशक
जो है, पर तू नहीं, पीत अधरों पर जो
अब भी इतने मृदु अपनी खामोशी में,
उन आँखों पर, विस्मृत मृत्यु में सोता जो
उस आकृति पर, रक्षित कीट-क्रोध से जो
एक न अश्रु बहाना, उस पर एक नहीं,
अश्रु कल्पना में भी, और न वे रँग जब
चले गये हैं, वे पवित्रतम गुण भी अब
नष्ट सचेत वायु से रह पायेंगे ही,
सरल गीत के क्षण विराम में ये जीवित!
उच्च शोकगीतों से मत दुहराओ स्मृति,
उसकी जो अब नहीं रहा, या चित्रकला
व्यर्थ लुटाती दैन्य, या कि दुर्बल रूपक
वास्तु-कला के, जो वे कहते हैं शीतल
अपनी शक्ति-कथाएँ; कला, वक्तृता, या
जगती के ये सभी दिखावे, व्यर्थ क्षणिक,
उस विनष्टि पर रोना, जिसने परिवर्तित
किया प्रकाशों को इस काली छाया में!
वह विषाद गहरा इतना आँसू न जिसे
प्रकट कर सकेंगे, खंडित है सभी हुआ
एक साथ ही, एक गुजरती आत्मा जब
जिसकी आभा में मंडित था विश्व सकल
तजती है उसको जो पीछे रह जाते

महीं हिचकियाँ आह शीत अथवा लिपटी,
आशा का उद्दीप्त नाद, लेकिन पीला
यह नैराश्य और शीतल वह, खामोशी,
जो निसर्ग का है विराट ढाँचा, जाला
मानवीय चीजों का, जन्म, समाधि, कभी
जो थी, अब पहले जैसी है नहीं रही !

(काव्यांश—ऐलास्टर—१८१६)

आतिथ्य

उजड़ ग्राम एक तब वन के भीतर पड़ा दिखाई,
फलों कुसुम से सजे पर्ण अब बिखर गये मुरझाकर।
भूखा झंझावात; खून से भीगी धरती इसकी,
शून्य अलावों से दीवारें, ढेर, मृत्त थी लपटें।
अब उन घरों बीच, जीवन के चिह्न उड़ गये सारे,
उन सब लाशों के भीतर से; लेकिन वह विस्तृत नभ,
आच्छादित था चपला से, सिर ऊपर था वह खंडित,
काले शहतीरों के द्वारा, सोये हुए चतुर्दिक
नर, नारी, शिशु, किया गया वध अधाँधुंध ही जिनका ! (१)

झरने के तट से चलते मैं उतरा एक जगह पर,
जो था हाट, और फिर मैंने उन लाशों को देखा,
अपनी दृष्टि कँटीली से, जो तकती हुई परस्पर
एक दूसरे का मुख, पृथ्वी शून्य वायु और मुझको !
जलधारों के निकट जहाँ मैं अपनी प्यास बुझाने,
नीचे झुका मगर सकुचाया, पी न सका तिल भर भी,
क्योंकि रक्त के खारीपन से स्वाद नीर का बदला,
लेकिन बाँधा टट्टू एक ओर फिर खोजा द्रुत ही,
यदि हो कोई जीवित, इस भीषण विनाश के भीतर ! (२)

किन्तु नहीं था कोई जीवित छोड़ एक नारी को,
जिसको मैंने पाया गलियों में आवारा फिरते,
और हुई वह उजड़ सी थी ज्यों मानव की आकृति
किसी अजनबी दैन्य-शाप से प्रेत सदृश हो जावे !
शीघ्र सुनी आहट मेरे चरणों की, कूदी मुझ पर,
और धर दिये मेरे अधरों पर जलते चुम्बन, फिर,
एक दीर्घ उन्माद भरे तब अट्टहास से हँसकर,
बोली, 'नश्वर नर, तू अब गम्भीर पी चुका है यह ! (३)
मेरा नाम महामारी है, इस सूखी छाती से
कभी पालती दो बच्चों को एक बहिन, एक भाई
आई मर जब लौट, रक्त में सना एक था लेटा,
घातक घाव तीन थे, लपटों में दूजा भी खोया,

तब से मैं अब नहीं रही हूँ माँ; मैं हूँ बस केवल
सिर्फ महामारी होकर के फिरती हूँ गलियों में
घूमा करती, ताकि कर सकूँ बध, या घोटूँ गर्दन,
वे सब अधर, जिन्हें हैं मैंने चूमा, मुरझायेंगे,
किन्तु न यम के, यदि वह तू भी, हँस सँग काम करेंगे ! (४)

'आया तू क्यों यहाँ ? चाँदनी की गिरती हैं धारें,
उस भीगी घाटी में से उठ रही तुहिन, जो मेरी,
बच्ची को तर कर देंगी, बच्चे के घावों को भी,
जिसमें अब कीड़े हैं, तू भी जिन्हें देखता ही है !
पर पहले, तू बता, खोजता किसे ? "खोजता भोजन"
"अच्छा यह तू पायेगा, ऐसी 'अकाल' दावत पर
करता इन्तजार अपना, है यद्यपि क्रूर भयानक
किन्तु न लौटाता, निज घर में उसको जिसके
अधरों को मैंने चूमा, वह कभी नहीं लौटाता !" (५)

ज्यों ही वह बोली, सशक्त मुझको तब जकड़ा उसने
उन्मादी आलिंगन में फिर मुझे ले गई अनगिन
ध्वस्त अलावों से होकर अनेक लाशों के ऊपर
और अन्त में हम आये सूनी कुटियाँ में, भू ही
फर्श जहाँ थी, भयावनी निज स्थिति से उसने
उजड़े हुए घरों से फिर फिर किये इकट्ठे, सत्वर
तीन ढेर शुष्क रोटी के, जिन्हें मृत्त से बीना
जिनके चारों ओर शीत से कड़े बालकों के शव,
रक्खे गोलाई में उसने थे जो स्तब्ध, घूरते ! (६)

एक ढेर पर वह उछली; फिर निज विक्षिप्त दृष्टियाँ
ऊँची उठा पुकारा उसने, "जाओ ! शामिल हो ओ !
इस महान दावत में, कल हम सभी मरेंगे !"
औ' फिर निज पीले पग से उन टुकड़ों को ठुकराया
अपने रक्तहीन मेहमानों को, वह दृष्टि देखकर
मेरी आँखों और हृदय में पीर उठी, वह जिसने
किया प्यार मुझको, निज खोये दृष्टि शरों से उसने
घोर निराशा दबा, दिखा सकता था मैं हमदर्दी,
पर मैंने खा लिया खाद्य, परसा जो उस नारी ने ! (७)

(काव्यांश—रिवोल्ट आफ इस्लाम—१८१७)

वसंतश्री

शिशिर झकोरे पंखयुक्त बीजों को बिखरा देते,
उड़ा-उड़ा कर धरती के ऊपर; आते तदनन्तर,
हिम, बारिश, तूफान, कुहासे, जिन्हें उदास शरद ऋतु,
ले जाती 'शीथियन*' गुहा से, बाहर पाँत बनैली,
देखो! वासंतिका, अवनि में है बटोरती जाती,
निज वायवी परों से झरती हुई तुहिन की बूँदें,
सुमन खिलाती गिरि पर, फल बिखराती मैदानों पर,
लहरों और वनों में भरती चलती अपना गायन,
प्यार, वस्तुएँ चेतन पातीं, प्राणित पदार्थ अचेतन!

[२]

हे, वसंत रूपसि! उज्ज्वलतम, सर्वश्रेष्ठ, सुन्दरतम,
पवन पंखमय प्रतीक है तू, आशा और प्यार की,
और जवानी की, खुशियों की; जब तू आती तब यह-
काली शरद व्यथा से भरती; क्या तू होती शामिल,
अश्रुकणों में, जो खोते तब उज्ज्वल मुस्कानों में?
तू है अग्नि हर्ष की, शिशु है, जो धारण करती है,
अपनी जननी की म्रियमान मुस्कराहट, मृदु, कोमल
तेरी माता, शरद, क्योंकि उसकी समाधि को तू ही
धरती सद्य कुसुम प्रदीप्ति फूलों सी, मृदुल चरण से,
चलती, ताकि न जगे पर्ण जो कफन बने हैं उसका।

[३]

'गुण', 'आशा', और 'प्यार', ज्योति, नभ के समान होते हैं
घेरे हुए अवनितल को; हम चुने दास हैं उनके
नहीं हमारी आत्मा के क्या चक्रवात ने हाँके—
अमर सत्य के बीच, भाव के सुदूरतम गह्वर में?
लो! अब आता शरद, विषाद अनेक कष्ट का बनकर
होकर मृत्यु-तुषार, पक्षाग्र प्रभंजन का होता है

* शीथियन—प्राचीन काल के यूनानी यायावरों का सम्प्रदाय विशेष

अनाचार का आप्लावन हो जिसकी काल हिलोरें
तांत्रिक के शब्दों को 'मत' पर हिम-सा-जड़ कर देतीं।
और बाँधती हृदय मानवी, निज विश्रान्ति घृणय सी।

[४]

बीज मृत्तिका के भीतर हैं शयन कर रहे; तब तक
जालिम अपने तहखानों को बध्यों से भरता है।
पीत शहीद सुरक्षित शूली के ऊपर मुस्काते,
क्योंकि नहीं वे कुछ अब कह सकते हैं; दिन-दिन
यह क्रमशः विज्ञान चंद्रमा का घटता जाता है,
मध्य सितारों में अपने; उस निविड़ तिमिर के भीतर
धरती के बेटे मिथ्या देवों को पूज रहे हैं!
और जयी हैं धवल पुरोहित झोंका या प्रहार सम—
स्वार्थ चिन्तना की छाया मानवी दृष्टि पर पड़ती।

[५]

यही शरद है इस जगती का, हम जिसके भीतर हैं
मरते, जैसे शिशिर काल के पवन हो रहे निष्प्रभ
सूखी और कुहासामय समीर के ऊपर क्षय हो!
देखो! वासंतिका उतरती, यद्यपि हम गुजरेंगे
हम जो लाये सम्भावना जन्म की इसकी; छाया
मृत्यु हमारी से, ज्यों गिरि से, गिरा रही है
भविष्य को—विराट सूर्योदय को; यों आवृत्त कर।
जैसे ऊपर—छाया करते पंखों के पर सँग, निज
शांधी-अंचल खाड़ी से यह धरा गरुड़ सी उठती!

(काव्यांश-'रिवोल्ट आफ इस्लाम–१८१०)

पृथ्वी का गीत

मेरे जीवनहीन पर्वतों के ऊपर,
हिम भी शिथिल ढुलकता निर्झर में गल कर!
मेरे ठोस सिन्धु, बहते, गाते, चमके,
मेरे अन्तर से उल्लास उमड़ता है!
मेरी शीत-नग्न-छाती को ढकता है—
अप्रत्याशित जन्म-वसन यह ले करके,
वह उल्लास आत्मा है जो तेरी ही!
ढकी नग्नता मेरी ही!

तुझे निहार, सोचता मुझको परिचय है,
डण्ठल फूटे हरे, कुसुम आभामय हैं,
भाषित आकृतियाँ हैं मेरी छाती पर,
है संगीत समन्दर और समीरण पर,
पंखिल बादल उड़ते फिरते इधर उधर,
बरखा से श्यामल नव कलियाँ देख रहीं सपने में जो!
प्यार! प्यार! यह सभी ठौर तुम ही तो हो।

(काव्यांश प्रोमे० १८१९)

आत्मा का गीत

मैं तो कवि के अधरों पर ही सोती आई।
प्रेम-प्रवीण सदृश, सपनों में खोती आई,
उस ध्वनि में, जो उसकी निश्वासों से पाई।
खोज प्राप्ति करता न पार्थिव आशीषों की,
पर वह जीता पाकर आकांक्षी चुम्बन ही,
आकृतियों के, भाव-वन्यताओं में भटकी;
उदय-अस्त तक जो कि रहेगी उससे गोचर,
जबकि झील पर प्रतिबिम्बित होता है दिनकर,
कपिल भृङ्ग मंडराते हैं माधवी पुष्प पर!
क्या है यह पदार्थ लखता न यत्न करता पर,
इनसे ही वह लेता है अभिनव सरजन कर
आकृतियों का, जीवित मानव से वास्तवतर
जिनसे है शाश्वतता पोषित होती आई
मैं तो कवि के अधरों पर ही सोती आई।

(काव्यांश प्रोमे १८१९)

एशिया का गीत

मंत्र-मुग्ध-तरणी सा मेरा प्राण।
तिरता जाता सोते हंस समान!
तेरे मधु गायन की रजत ऊर्मियों पर।

देवदूत सा होकर के तेरा राजित,
चक्र सहारे करता है यह संचालित,
जबकि समस्त पवन झंकृत मृदुस्वर पीकर।

लगता जायेगा चिर चिर को तिर तिर कर,
बहुधारों में वितरित सरिता के ऊपर।
मध्य घाटियों शैलों वन प्रान्तर ऊपर।

आवश्यकता का है स्वर्ग सजा सब पर,
चलता ज्यों है महाजलधि को सपना गत,
त्यों ही जब तक मैं भी, चहुँ दिशि चिरविस्तृत,
वाणी के घनतम सागर में नहीं तरित।

(काव्यांश प्रोमे० १८१९)

प्रकृति आत्मा की स्तुति !

जीवन के जीवन ! ज्योतित तेरे अधरों से,
उनके मध्य श्वास को करता, स्नेह उन्हीं का,
औ' तेरी मुस्कानें, पहले क्षय होने से.
करती शीतल वायु अग्निमय, डाल यवनिका—
उन नजरों को ताक जिन्हें मूर्छित हो जाता,
उनके भँवर जाल से वह फिर निकल न पाता !

(२)

हे प्रकाश के शिशु ! तेरे अवयव हैं जलते,
आक्रिट[1] में से, उन्हें आवरित सा जो करती,
ज्यों प्रभात की दीप्त शिरायें, मेघों में से,
अपने वितरित होने से पहले, मुस्काती !
चाहे जहाँ विकीर्ण, ज्योति तू अपनी लेकर,
यह पवित्रतम फिजाँ कफन डालेगी तुझ पर !

(३)

अन्य रूपमय नहीं तुझे कोई निहारता,
पर तेरा स्वर गूँज रहा जो मद्धिम कोमल !
सुन्दरतम के सदृश क्योंकि वह तुझको करता,
नजरों से अपनी वह पिघली आभा ओझल—
अनुभव करते सभी, तुझे लखते न कभी पर,
ज्यों मैं अनुभव करता अब, चिर-विलुप्त होकर !

(४)

दीप धरा के; जहाँ कहीं जाता, तू इसकी
धूमिल छायाओं को आभा पहिनाता है।
मंथर मंथर पवमानों पर विचरण करतीं,
उनकी आत्मायें, जिनको तू अपनाता है ?
जब तक नहीं व्यर्थ होतें, ज्यों मैं होता हूँ,
उन्मद और विलुप्त नहीं, तो भी रोता हूँ।

(काव्यांश-प्रोमे०—१८१६)

1—वस्त्र-विशेष।

धरती माता

मैं हूँ भूमि !

तेरी माता! वह हूँ जिसकी पथरीली शिराओं में,
उच्चतम वृक्ष के अन्तिम किसलय तक
हिमानी पवन में जिसके कृश पल्लव काँपे,
उल्लास दौड़ा, जैसे जीवित आकृति में लहू,
जब उसकी गोद से तू कीर्ति के बादल की तरह उठा,
तीव्र हर्ष का आत्मा बनकर !
और तेरे स्वर पर उसके चीड़ के पुत्रों ने उठाई
अपनी मूर्च्छापित भृकुटियाँ कलुषित रज से,
और हमारा सर्वशक्तिमान शासक मृत्यु के भय से
पड़ गया पीला, जब तक न उसके गर्जन ने तुझे यहाँ
बाँध दिया; तब तू देख उन करोड़ों संसृतियों को
जो जलती हैं, लुढ़कती हैं, हमारे चारों ओर।
उनके निवासियों ने देखा—
मेरी ज्योति को घटते बढ़ते विस्तृत आकाश में
विलोड़ित था अजनबी तूफान से, और नई आग ने
शुभ्रहिम के भूकम्प-खंडित पर्वतों से,
अपने बोझिल कुन्तल को हिलाया गगन की भृकुटि के नीचे,
तड़ित और बरखा से भर गये मैदान !
नीले नगरों में खिले, खाद्यहीन दादुर
विलासोन्मत्त कक्षों से थरथराने लगे,
जब महामारी मनुज, पशु और कीट पर फैली, बीमारी
और अकाल; और जड़ एवं तरु,
अनाज, लताओं, और चरागाह की घास पर, गिरी
काली रोग छाया और फैली अमिट विषैली वन्य वनस्पतियाँ।
उनके विकास को सुखाते—क्योंकि मेरा वक्ष शोक से
शुष्क था ! और कृश वायु, मेरी साँस, कलुषित हो गई थी
एक मातृ-घृणा के कुस्पर्श से, जो उच्छ्वसित हुई थी,
अपने लाल के हत्यारे पर; आह, मैंने सुना तेरा शाप
वह, जो तुझे स्मरण नहीं, पर मेरे हून असंख्य—

सागरों ने, निर्झरों ने, पर्वतों ने, गुफाओं ने, आँधियों ने,
और उस व्यापक सम्मुख वायु ने तथा मृतक के—
मूक जन संकुल ने सुरक्षित रक्खा है, जादू की संचित निधि को,
हम चिन्तना करते हैं गुप्त उल्लास और आशा के साथ
पर उनको कहने का साहस नहीं !"

(काव्यांश-प्रोमे०—१८१६)

ऐथेन्स-ज्योति

"हे स्वतन्त्रते ! यद्यपि तव ध्वज शीर्ण, हहरता तो भी,
ज्यों प्रतिकूल पवन के बहती गर्जन-झंझा-धारा"
(बायरन)

एक यशस्वी जनसंकुल ने फिर तड़काया,
राष्ट्रों की उद्दाम तड़ित को, स्वतन्त्रता भी
हृदय, हृदय, गुम्बज गुम्बज से स्पेन[1] देश पर
आसमान में संक्रामक शोले भड़काती—
चमक उठी मेरे प्राणों ने फटक तोड़ दी—
उदासीनता की निज शृंखला जो आवेष्टित,
उच्च दृढ़ गीतों के द्रुत पर से अपने को,
जैसे तरुण गरुड़ उड़ता है भोर घनों में,
अपने चिर अभ्यस्त-वध्य पर वह मँडराता,
जब तक नहीं 'देवि' का भँवर प्रभंजन ढँकता—
इसको, उतर कीर्ति-नभ से अपने आसन से,
औ' जीवंत शिखा के उस सुदूरतम वर्तुल—
की जो भरता है दुराव, था जो पीछे स्थित,
गिरी किरन, ज्यों नौका की ध्वनि फेन बनाती[2]
तभी सुनी ध्वनि गहराई से करता उद्धृत !

"सूर्य और शान्ततम चंद्रमा आगे निकसे
जलते नखत अगाध विवर के पटक दिये थे
नभ के गहरे तल में, यह रहस्यमय पृथ्वी
जो कि द्वीप थी निखिल विश्व के महा सिन्धु में

'1 ओड टु लिबर्टी' कविता की रचना, जिसका कि यह काव्यांश है, स्पेनिश जनता के १८२० विद्रोह के अभिनन्दन में लिखी थी।

२ यह अवतरण शेली की द्रुत कल्पना-बिम्ब का अच्छा उदाहरण है। अनुवाद यथासम्भव शब्दशः है। पर फिर भी पूरा चित्र स्पष्ट नहीं हो पाता। इसका कारण मूलकवि की अनुभूति और अभिव्यंजना का अन्तर है।

इसके पवन सर्ववाहक में अधर धरी जो!
पर यह दैविक राम भूमण्डल अब भी केवल
था आराजकता अभिशाप मात्र ही भार।
क्योंकि नहीं थी तू, पर रहा निकृष्टतम से,
पैदा करती निकृष्टता पशुओं की आत्मा
विहगों की, जल आकृतियों की, जलती थीं सब
उनमें था संघर्षण सबमें और निराशा,
उनमें फैली, भड़की; बिना संधि, शर्तों के।
उनकी उत्तेजित पोषिका-कोख हो आई
भीतिमान, थे क्योंकि वन्य पशु, पशु से जूझे,
कीट-कीट पर, मनुज मनुज पर, हर दिल था तूफान नरक सा

मानव ने साम्राज्य वेश में किया विभाजित
तब अपनी पीढ़ी को कीड़ाङ्गन के नीचे
सूरज के सिंहासन के प्रासाद पिरामिड
मन्दिर और कैदघर कीटों सी जनता को
जैसे कटे गुम्फ पार्वत्य भेड़ियों के हों!
पर यह मानव का जीवित संकुल बर्बर था
चतुर और अन्धा असभ्य वह, क्योंकि नहीं तू
वहाँ रही, पर जनाकीर्ण निर्जन के ऊपर
ज्यों हो एक भयावह मेघ नष्ट लहरों पर
यों लटका था जुल्म और जिसके नीचे थी
पूजित पशुता बहिन, गुलामों की संकुलिका!
अपने व्यापक पँखों की परछाईं में ही
आराजक और धर्म पुरोहित, स्वर्ण रक्तपर जीते हैं जो,
जबतक नहीं कलुषमय होता उनके प्राणों का अन्तरतम
हांक रहे थे विस्मय मूक रेवड़ों को हर एक दिशा में!
झुके सिन्धु में भूमि खण्ड, औ' नीलम टापू
और मेघवत पर्वत, आवेष्टित हिल्लोलें
ग्रीस देश की, बोली थीं यौवनमय ऊष्मा
खुली हुई मुस्कानों में, अनुकूल गगन की!
उनकी मंत्रसिक्त गुम्फों से हुईं विकीर्णित

संतों की अनुगूँजों से धूमिल स्वर-लहरी,
उस अज्ञेय वन्यता पर, अंगूर लतायें,
लाल अन्न की और नरम जैतून उगे थे,
जो असंभ-मानव-प्रयोग को अभी अकेले,
और सिन्धु के तटों अनावेष्टित कुसुमों से,
जैसे मनुज विचार ग्रंथ, शिशु के मानस में,
उस कुछ से, जो कुछ के संभावन को भरता !
और कला के अनाहत स्वप्न सुप्त थे आवृत्त
बहुल शिराओं से ही 'पैरीअन' प्रस्तर की,
शिशु सा वाणी हीन काव्य गुनगुन करता औ'
दर्शन तुमको अपलक दृग था जारी करता—

प्रमुख 'पेंजियन' पर, एथेन्स उठा, ज्यों नगरी
दृश्य बनाती है बैंजनी कगार रूपहली मीनारों पर,
जो रणग्रस्त घनों के, व्यंग सदृश लगते हैं
प्रति राजसी राजगीरी पर; सागरतल हैं
इसे पाटते; सांध्याकाश बना क्रीड़ालय :
इसके द्वार भरे पवनों से गर्जन-पोषित,
था प्रत्येक शीश सज्जित मेघिल पंखों में
रवि की ज्वाला-माल से, कैसी दैविक कृति थी !
पर एथेन्स और दैविकतर, प्रदोष था वह
निज स्तम्भों के शृङ्ग सहित, मानव इच्छा पर
जैसे हीरे के पहाड़ पर वह बैठा हो !
क्योंकि वही तू, तेरी सर्वसृजक चतुराई,
जब संकुलित हुई उन रूपों से जो हँसते,
चिरस्थूलों पर, सङ्गमर्मरी अमर्त्यता में !
वही शिखर, तव प्रथम पीठिका, अंतिम् वाणी !

तीव्र प्रवाहित सरिता की उस नीर सतह पर,
सोया पड़ा हुआ है इसका बिम्ब लहरमय !
चिर कम्पित है, पर है अक्षय आभा झिलमिल !
गरज रही तेरे कवियों, सन्तों की वाणी,

भू-जागृत करने वाले झोंको समान जो,
उन अतीत-गुफाओं के द्वारा, गूँज रहा है,
धर्म, चक्षु निज, मूक जुल्म है भय से डोला!
हर्ष प्यार, विस्मय की नभचारी ध्वनि उड़ती,
वहाँ जहाँ, आशा भी कभी न थी उड़ पाई,
चीर रही जो काल देश के आवरणों को;
एक सिन्धु पोसता, मेघ निर्झर, नीहारें,
एक सूर्य चमकाता नभ. है मुक्त आत्मा
भरती जीवन और प्यार से करती फिर नव
संघर्षण को, जैसे होती है यह दुनिया,
फिर नवीन ऐथेन्स ज्योति की किरणें पाकर!

(काव्यांश—ओड टु लिबर्टी—१८२०)

"एडोनेस" के कुछ स्फुट पद*

(१)

रोता हूँ 'एडोनेस'[1] को मैं, आह! हो गया है वह मृत;
एडोनेस को रोओ! यद्यपि नहीं आँसुओं का वर्षण—
पिघला सकता है तुषार, जिससे आवृत हुआ प्रिय शिर
है, उदास घटिका! सब वर्षों में से थी तू चुनी गयी!
ताकि हमारी क्षति पर हो शोकित, उद्बोधित करके निज-
समतुल्यों को, जो न स्पष्ट औ' सिखला उनको अपना दुख
कह, मेरे ही साथ 'एडोनेस' हुआ मृत; जब तक भावी
विस्मृत करे न गत को, होवे नहीं भाग्य औ' उसका यश,
एक प्रतिध्वनि और ज्योति बनकर शाश्वतता के पट पर!

(२)

शक्तिमयी माँ! कहाँ गई थी तू? जब वह मृत हुआ था,
जब खोया था तेरा लाल, बिंधा शर से, जो उड़ता—
अन्धकार में? हे, 'उरानिया'[2] देवी कहाँ गई थी,
जब 'एडोनिस' मृत हुआ था? वह तब मूँदे नयना
आब स्थित थी, जबकि एक कोमल निश्वास स्नेहमय,
करती थी ज्योतित फिर से, निष्प्रभ संगीत स्वरों को,
जिनसे, पुष्पों सा, नीचे शव पर सव्यंग जो हँसते,
किया अलंकृत और छिपाई यम की बोझिल काया

(३)

पर अब तेरा सब से प्रिय, सबसे छोटा सुत होता,
हाय! सहारा तेरे विधवा जीवन का—जो विकसित
पीत पुष्प सा हुआ, जिसे चाहा उदास सुन्दरि ने

---

* स्फुटिक पद होने के कारण इस काव्यांश का तारतम्य नहीं बँध पाता है। पर इसका काव्य-सौंदर्य वेदना के गहरे तल को स्पर्श कर उठने वाले विचारों के अंकन में है। धीरे-धीरे इसकी पंक्तियों का यदि पाठ किया जाये, तो अनेक पदों में मूल का आनंद मिल सकता है। १—कवि कीट्स की मृत्यु पर लिखित शोक गीत। एडोनिस कीट्स के लिए प्रयुक्त हुआ है। २—कला की देवी।

और तुहिन की जगह सत्यस्नेहिल आँसू से पोसा!
शोक प्रदर्शक दल को है, सबसे संगीतमयी, री!
तेरी अति दूरागत आशा, मोहकतम औ' अन्तिम
पुष्प कि जिसके पाटल, मुरझाये खिलने से पहले
भूत हुआ फल की आशा पर, व्यर्थ हो गई है अब!
खंडित कलिका सोती है झंझा तो उतर गया है।

(४)

वन, प्रान्तर, निर्झर, हरियाले खेत, शैल, सागर से,
त्वरित जिन्दगी पृथ्वी के अन्तर से फूट पड़ी है!
जैसे इसने किया सदा परिवर्तन औ' प्रवाह से
जबसे पहली बार विश्व के उस महान प्रातः में,
ऊषा-सा मुस्काया प्रभु कोलाहल पर; उठ आये
नभ के दीपक लें कोमलतर ज्योति वाष्प से इसकी,
सभी असदतर वस्तु, हाँफती शुचि-जीवन-तृष्णा संग,
अपने को विकीर्ण करतीं, औ' प्रेम-हर्ष में खोतीं,

(५)

अन्य जनों के मध्य, एक कृश आकृति अति साधारण,
आई ज्यों हो, प्रेत मानवों में, निस्संग अकेला,
जैसे अन्तिम मेघ किसी निःशेष प्रभंजन का हो,
जिसका गर्जन था इसका स्वन; 'एक्टाइन' सम उसने
मेरा यह अनुमान, प्रकृति की निरावरण सुषमा को
घूर घूरकर देखा था, औ' अब है विवश पलायित,
इधर उधर मद्धिम पग धर कर, विवश वन्यता पर वह,
और उसी के भाव, क्रुद्ध श्वानों से कठिन डगर पर,
अपने जनक, बध्य के पीछे लगे हुए थे धाकर।

(६)

शार्दूल सी आत्मा थी वह सुन्दर और त्वरामय,
प्रेम छद्म आवरित हुआ, ज्यों निर्जनता में लिपटा—
हो कोई बल दुर्बलता से; हो सकता विमुक्त यह
अति कठिनाई से छाती पर धरा बोझ घटिका का;

वह म्रियमाण प्रदीप; एक है वह निष्फैरित फुहारा
वह खंडित तूफान लहर — हम अब भी जबकि बोलते—
हुआ नहीं क्या खण्डित है वह ? मुरझे हुए कुसुम पर
वह मारक मार्तण्ड प्रखर मुस्काता है, कपोल पर,
जीवन जल सकता लोहू में, चाहे भग्न हृदय हो !

(७)*

रहता एक, अनेक बदलते और गरजते नभ की—
द्युति रहती चिरदीप्त, भूमि की छायाएँ उड़ जातीं
जीवन बहुवर्णी शीशे के गुम्बज सा, कर देता
कलुषित धवल कान्ति को चिरता की, जब तक न पगों से
यम कर देता चूर चूर; मर, यदि होता तू संग जो,
उसके, जिसे चाहता, जा तू वहीं जहाँ सब जाते
नीला नभ, प्रसून, पावस; संगीत, शब्द औ' यह सब,
वृहद मूर्तियाँ, रोम नगर के, दुर्बल अभिव्यंजन हैं
उस प्रभा के, जिसको विकीर्ण करते अनुरूप सत्य से !

(८)

शान्ति ! शान्ति ! वह मृत नहीं वह नहीं सोरहा, उसकी,
अभी जिन्दगी के सपने से आँख खुली जागा है।
यह तो हम हैं, जो तूफानी दृश्यों में खोकर के
करते हैं संघर्ष प्रेत छायाओं से अलाभकर
औ' उन्मद निद्रा में हम निज आत्मा के चाकू से
अक्षय नास्तियों पर करते हैं प्रहार हम क्षयशः
शव रक्षक में धरे शवों से, भीति और दुख हमको,
करते हैं बीमार दिन ब दिन हमको चूस रहे हैं,
शीताशें कीटों सी उड़ती, निज जीवन-मिट्टी में।

(९)

क्यों रुकता क्यों पीछे मुड़ता, क्यों कम्पित मेरे दिल ?
तब आशायें गईं पूर्ण हो, यहाँ सभी चीजों से,

*(७) में शेली की चमकीली कल्पना का अन्यतम उदाहरण।

वे कर गईं पलायन, अब है बिदा तुझे भी लेनी,
एक ज्योति अब विगत हुई; घूमते हुए वत्सर से
नर से, औ' नारी से, जो तुझको प्रिय अब भी करता
आकर्षित मर्दन को; आह्वानित निष्प्रभ करने को,
कोमल नभ मुस्काता, फुस फुस करता मंद समीरण—
एडोनस पुकारता जल्दी करो वहाँ समीप ही
और न खंडित करे जिन्दगी जिसे मरण जोड़ेगा !

(१०)

वह प्रकाश जिसकी स्मिति से है, ज्योतित सकल भुवन यह
वह सौंदर्य, पदार्थ सभी जिसमें सक्रिय औ' स्पंदित
ग्रहणमना अभिशाप जन्म का, भी न तृप्त कर पाया,
वह सच्चिदानन्द और वह प्रेम भारमय जो उस
जाली से अन्धा हो होकर जिसे मनुज, पशु, धरती,
पवन, सिन्धु बुनते हैं, जलता है उजला या धूमिल;
चूँकि सभी हैं वे दर्पण उस ज्वाला के ही जिसके
लिये तृषा सब झलक उठी है, अब जो मेरे ऊपर
शीतल मरणशीलता के अन्तिम मेघों को पीकर।

(११)

साँस कि जिसकी शक्ति गीत में आह्वानित है मेरे,
उतरी है मुझ पर; मेरे प्राणों की तरणी तट से
दूर धकेली गई, सुदूर काँपते जन संकुल से,
कभी नहीं झंझा के सम्मुख जिनके पाल झुके थे।
भारयुक्त पृथ्वी वर्तुलाकार नभ होते खंडित !
हाय ! भयंकर अन्धेरी दूरी में विवश पड़ा हूँ,
जबकि स्वर्ग के अन्तर्तम के पर्दे में से जलती।
ज्यों प्रदीप्त तारिका, आत्मा एडोनिस की त्यों ही,
दीप्त हो रही शयनस्थल से, जहां चिरन्तन सोये !

(काव्यांश-एडोनिस — १८२१)

"जीर्ण शीर्ण हो गई यवनिका,
भूमण्डल की,
आभा के पर लगा विश्व हैं,
वन्य कपोतों से छितराये !
स्थान निखार, न कृत है उन पर
और बीच मैथिल वेदी के,
ज्योति आसनों मध्य तिमिरमय
पारदर्शी नील शिखा में
स्वर्णिम विश्व, विनर्तित, दीपित
उड़ान...... .... में
ज्यों सहस्र ऊषायें नभ पर
आभायें उठतीं व्यापित हैं
भयावने तमिस्र, गर्जन से
ज्योति और गायन है जगमग !
(अधूरे 'ओवोंग टु हैवान; का एक काव्यांश १८२१)

नया यूनान

होता है आरम्भ विश्व में फिर नूतन युग,
लौट रहे हैं स्वर्णिम वत्सर !
पृथ्वी व्याल समान केंचुली बदल रही है !
उसकी शिशिर तृणावलियाँ अब झर, झर गिरतीं !
गगन मुस्काराता, विश्वास, राज्य, दीपित हैं,
जैसे गलते हुए स्वप्न के शेष चिह्न हों !

एक प्रखरतर 'हेलस[1]' पोषित करता पर्वत,
दूर शान्ततर हिल्लोलों से !
एक नवीन 'पैन्युस[2]', निज झरने लपेटता !
भोर तारिका के विपर्यय में !
जहाँ सुघरतर मंदिर चमके, वहाँ सो रही
तरुण 'साइक्लड[3] और चमकती गहराई पर !

आह ! नहीं फिर अब दुहराओ 'ट्राय[4]' कथा को !
यदि पृथ्वी को मरणपथ बनकर रहना है !
'लेअस[5] रोष को, उस प्रमोद में मत अब घोलो,
मुक्त मनुजता पर प्रभात सा मुस्काता जो !
यद्यपि और गम्भीर स्फिंक्स[6]' पुनर्नव करता,
'थीबिस[7] को अज्ञान, मृत्यु की प्रहेलिकाएँ !

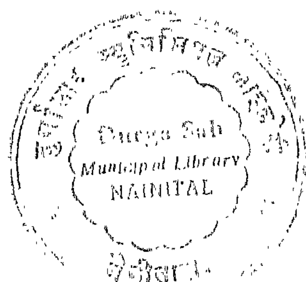
फिर से नव एथेन्स उठेगा अवनीतल पर,
और सुदूर भविष्यत भी उससे पायेगा,

१—यूनान का नाम । २—यूनानी नदियों का देवता । ३—'ऐजियन' सागर में गोलाकार द्वीप-मालिका । ४—भारतीय राम-रावण युद्ध से मिलती जुलती यूनानी-युद्ध आख्यायिका । ५—ईसा से २०० वर्ष पूर्व यूनान का एक प्राचीन वंश जो अपनी क्रूरता के लिये विख्यात था । ६—यूनानी दंत कथा के अनुसार मिश्र से आई क्रूर राक्षसी, जो थीब के निवासियों के समक्ष प्रहेलिका प्रस्तुत करती थी, उत्तर न पाने पर उनका वध किया जाता था । ७—यूनानी-काव्य में वर्णित मिश्र की नील नदी के किनारे स्थित विश्व का प्राचीनतम नगर । होमर के काव्य में इसका भव्य वर्णन किया है । अब भी दृश्य इसके पुरातन वैभव के साक्षी हैं ।

जैसे निलय पटल पाता दिवसावसान से
इसके गौरव की आभायें औ' छोड़ेगा
इतना दीप्त शून्य यदि जीवित रह सकता हो
सारी पृथ्वी ले सकती है अथवा दे सकता है यह नभ !

बन्द करो ! क्या घृणा, मृत्यु अब लौटेंगे ही ?
बन्द करो ! क्या मनुज बधेंगे या मृत होंगे ?
बन्द करो, तिक्ततर, भविष्यतवाणी के इस
भस्म मात्र को अन्तिम कण तक नहीं पियो !
जगती अतीत से थकित आह ! मर जायेगी
वर्ना इसको अपनी चिर थकन मेटने दो !

(काव्यांश—हेलास-१८२१)



ऐन्द्रजालिका का गीत

जीवन-प्रभात में वह आया जैसे सपना,
उड़ गया छाँह सा, होते होते दोपहरी !
वह चला गया; पर मेरी शान्ति, अशान्त बना,
मैं भटक रही, घट रही, थकी ज्यों यह शशि री !
ओ, मृदुल गूँज, तू जग जगकर,
तू मेरे लिये तनिक उत्तर,
दे देना जब यह टूट रहा हो मेरा उर !

हाँ, तेरे अधर मृदुल, निश्छल, री ! कितने ही !
पर मेरे उर का कभी न गा सकते गायन !
यह परछाईं जो प्राण-प्रहर में घूम रही,
ला सकती पुनः नहीं उसको भूला चुम्बन !
वह चला गया, ओ, मृदुल अधर,
मेरी सुनसान डगर में पर,
भर कर अनुपस्थिति तिमिर, जो कि यम से बदतर !

(एक अधूरे ड्रामा का काव्यांश (१८२२)